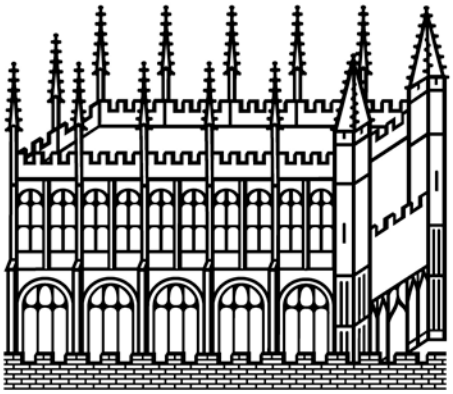

Bodleian Libraries

UNIVERSITY OF OXFORD

This book is part of the collection held by the Bodleian Libraries and scanned by Google, Inc. for the Google Books Library Project.

For more information see:

http://www.bodleian.ox.ac.uk/dbooks



This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 2.0 UK: England & Wales (CC BY-NC-SA 2.0) licence.

13.D.61. Hindi Krs M 1

Indian Institute, Oxford.
The Lucknow Sparks Library.
Presented
by
Munshi Newul Kishore.

Prabodhachandrodaya.

Parbodh Chander Codai Natuk

। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक ।

——oo——

श्रीराधाकृष्ण चरण कमल भक्ति तत्पर व्रजवासी
दास कृत

जिसमें

सन्तजनों के मनोरञ्जनार्थ विवेक और मोह
का सम्वाद दोहा चौपाई आदि अनेक
छन्दों में वर्णित है ॥

——oo——

स्थान लखनऊ

श्रीयुत मुंशीनवलकिशोरजी के मीसाचर
यन्त्रालय में मुद्रित
हुआ ॥

अगस्त सन् १८७५ ई०

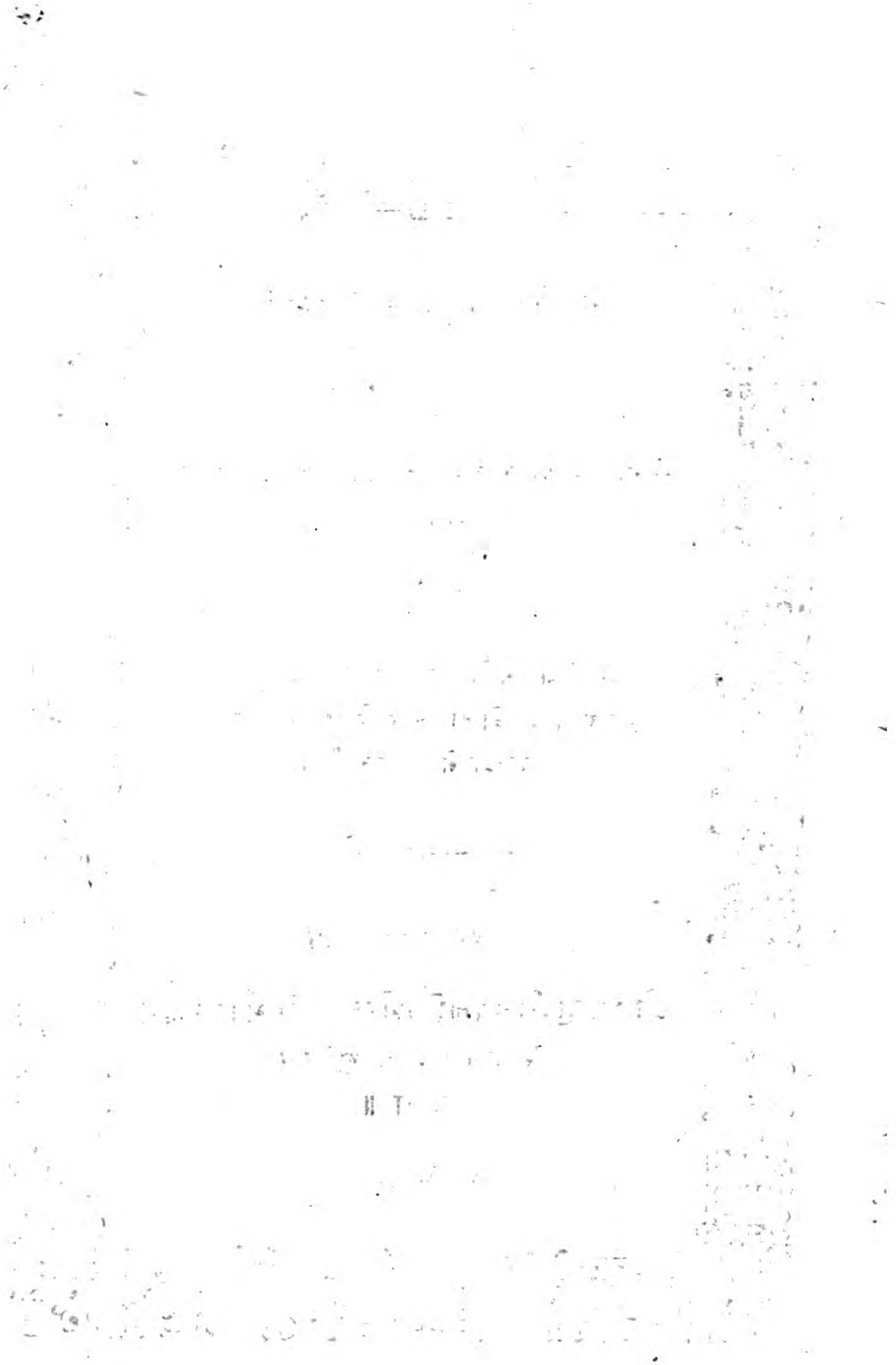

अथ प्रबोध चन्द्रोदय नाटक॥

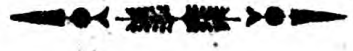

दो० चरण कमल बन्दौं रुचिर जे हरि दास अनन्य।
जिनकी कृपा कटाक्ष ते सकल देव परसन्य॥ १॥
धवल धाम जिनके हृदै सदा शांति सुखरास।
तहां सच्चिदानन्द हरि करत निरन्तर बास॥ २॥
जिन हरिको निर्गुण सगुण एक अनेक विधान।
बहुमत बहुश्रुति बहुस्मृति करत विविधि विधिगान॥ ३॥
बरणत विविधि विधान सब नहिं पावत कछु पार।
ताते यह निरणय कियो नेति नेति निरधार॥ ४॥
ऐसो प्रभु उरमें धरे विचरत हैं संसार।
जल पुरइन के पातलों सकल जगत व्यौहार॥ ५॥
परस्वारथ स्वारथ जिन्हैं परमारथ दातार।
जिनकी सङ्गत ते लहै जीव पदारथ चार॥ ६॥
दीनदयाल कृपाल शुचि ऐसे सन्त सुजान।
जन ब्रजबासी दासकी बिनय कीजिये कान॥ ७॥
दीजै दीन दयाल सुहि बड़ो दीन जन जानि।
चरण कमल को आसरो सतसङ्गत की बानि॥ ८॥

कवित्त—अन्त तो मलीन दीनहीन पुरषारथ सों कर्मन बिहीन पीन पाप को कहा कहों। विषया आधीन और कहा लौं कहै प्रवीन काम क्रोध लोभ मोह मद के धका सहों॥ रावरे समरथ हैं मोसे खल तारिबेको अधम उधारन हो और ते नदा चहो। सरल सुजान सन्त प्यारे की निछावर मोहिं दीजै सरनागत सन्त सङ्ग मों परो रहों ९॥

सवैया—आपनो रूप पिछान सी लाभ न भूलसी हानि बड़ी नहिं जीको। नाहिं बड़ो सुख भक्ति ते दूसरो दुःख न जानिबो राधिका पीको॥ चारिउ नीक न जानिपरै बिन

साधुके संग कहो करि नीको। वेद कहै अरुलोक लखै सत संगत सेव्य सही सबही को ॥ १० ॥

दो० दुख छूटै सुख निधि लहै भक्त भक्ति फलचार।
साध सङ्ग हो नर तरै यह भव पारावार ॥ ११ ॥

से० सतसंगति पर नमि गुरु पद पङ्कज राखि शिर।
प्रथम सुकवि अतिरम्य ग्रन्थोत्पति लिखि विधि सुनी ॥ १२ ॥

चौ०—दक्षिन भूमि भयो एक पण्डित। भक्तिज्ञान विद्या गुण मण्डित ॥ परम दयालदीनहितकारी। जीवनको पूरण चित कारी ॥ शिष्यन करै ज्ञान उपदेशा। जनम मरन जिहि मिटै कलेशा ॥ मोह तिमिर नाशक जिमि भामा। कृष्ण दास भट अस ता नामा ॥ तिनके शिष्य एक द्विज बालक। गुरू कृपा सरनागत पालक ॥ दया भाव तापर अति भारा। भवसागर ते चहै उबारा ॥ ताहि गुरू वेदान्त पढ़ावै। भक्ति ज्ञान बैराग दिढ़ावै ॥ सो किशोर वय काम नवीना। शृंगारादिक रस मन भीना ॥ गुरु उपदेश न मनमें आवै। जिमि ज्वर ग्रसित सुनाज न भावै। जौ मांगै तौ कुपथ खटाई। जाके खात ताप अधिकाई ॥ ताहि वैद समरत्थसुजाना। चूरण देत खटाई साना ॥ जाके खातहोय ज्वर नाशा। औगुन अमल न करै प्रकाशा ॥ १३ ॥

सो० तैसे गुरु सुजान कीन्हों ग्रन्थ नवीन तब।
कल विदूषक खान अर्थ सिद्ध वेदान्त मय ॥ १४ ॥

संगीतिकाछन्द—नाम राख्यो ग्रंथ को प्रबोध चन्द्र उदोत। सुनत मधुरे श्रवणको अति समुझिते सुख होत ॥ मथि निकास्यो वेद निधि तें सुधा को सो सोत। रीत नाटक तासु पाठक शिष्य कीन्हों पोत ॥ १५ ॥ सतसंगमें ऐसे सुनी मैं ग्रंथकी उतपत्ति। रचना विचित्र प्रबन्धसुन्दर वस्तु वरनन सक्ति ॥ हानि अरु मम मोह प्रापति ज्ञानकी सम्पत्ति। सुनै समुझै पढ़ै रुचि सों मिटै जगत विपत्ति ॥ १६ ॥

दो० सोतोबाणी संसकृत प्राकृतकरि न विचार।
ताके समुझन को चही विद्याबुद्धि प्रसार ॥ १७ ॥

बलीराम ताकीकरी भाषा यमन किताब।
सोजविद्या अतिकठिन समुझि नपरैसिताब॥ १८॥
मिश्र एक ऐसे कही जो यह भाषा होय।
सरलहोयतो सबनको सुनिसुख पावैलोय॥ १९॥
तातेयह भाषा करी अपनी मति अनुसार।
सत संगत परताप ते विपुल छंद विस्तार॥ २०॥
नहींचतुरनहिंरसिकबरनहिंकवियुक्तउदार।
पाछोलैं हरिजन कहत लेहैं साधु सुधार॥ २१॥
हरिजनचितवैं जासुतन दयादृष्टि करिबंक।
तासुभाल विधिलिखितजोहैहिं कुअंकसुअंक॥ २२॥
ऋषिशशि धनगणपति रदनसम्मतसरसविलास।
तामें यह भाषाकरी जैन ब्रजबासी दास॥ २३॥
कृष्णदास भटशिष्यसो कहत कथा परबोध।
नटलीलाके व्याजकरि परमतत्वमयशोधि॥ २४॥

कृष्णदास भटउवाच। चौ०। सुनहु शिष्य इक कथा सुहाई। परम विचित्र परम सुखदाई॥ कीरति ब्रह्म नाम इक भूपा। परम अनूप जासुको रूपा॥ कहौं कहां लौ राज बड़ाई। राज विभव सब विधि अधिकाई॥ जासु तेज जस-नाम प्रतापा। ब्रह्मसमान सकल जग व्यापा॥ बरनें कहा देश प्रभुताई। जगत शरीर जीव नृपराई॥ सचिव गुपाल नाम नृपकेरा। राजनीत बिधि चतुर घनेरा॥ सामरु दाम भेद अरु दण्डा। जानै सब बिधि सूर प्रचण्डा॥ ताके मते राज्य नृपकेरा। अति अकंमिति आनंदरिपु डेरा॥ निरखि समाजराजमद फूला। रहै मगन आपन पौ भूला॥ २५॥

दो० नटवर परम सुजान इक सकल कलागुण धाम।
आयो नृप दरबार में साधु समागम नाम॥ २६॥

तोमरछन्द—बहु शिष्यता के साथ। सुन्दर मनो रति-नाथ॥ कोउलिये ताल मृदंग॥ कोउ ढोलकी सुढचंग॥ कोउ बेन वीन उपंग। कोउ बहु बरीसा रंग॥ कोउ लिये हाथसितार। कोउ खंजरी करतार॥ तरुनी शुभग बहुसंग। लखि लजत तोय अनंग॥ अतिसुन्दरी सुकुमार। लघुवयस

दीरघ बार ॥ सब सुमुखि अति परबीन। दृगचपल खंजन मीन ॥ शुभबसन भूषण साज। अति सुभग सकल समाज ॥ सबनृत्य गान सुजान। गन्धर्व तियन समान ॥ सबउरबसी सकुचाहिं। जिनकीबिलोकनि माहिं ॥ सब कुशल गतिपरिहास। बरनैं बिबिधि इतिहास॥ धारैं बिबिधि विधि रूप। इतिहास के अनुरूप ॥ ल्यावैंचतुर बजुतर्क। लखि होय हिय अतिहर्ष ॥ ऐसोसमाज अनूप। निजसंगलै बज रूप ॥ सब भूप सम्मुख आय। कल्यान शब्द सुनाय ॥ २७ ॥

दो० सब समाज स्वर एक करि लगे करन सब गान।
प्रथम मंगला चरण हित अस्तुति श्री भगवान ॥ २८ ॥
पुनि इक पट मंदिर रच्यो स्वांग साज तहं राखि।
नट नटिनी निर्तत भये परम प्रेम अभिलाखि ॥ २९ ॥
छिनक निर्त्त करि नट कह्यो भुजा उठाइ पुकार।
तनक ढोल को थांभि कै चुप कीजो सब यार ॥ ३० ॥
जब सब गावन ते थंभे रहिगो तंत्री नाथ।
तब विदग्ध नट नटी प्रति करन लग्यो सम्वाद ॥ ३१ ॥

नटउवाच० चतुःपदी छन्द—ए मृगनैनी कोकिल बैनी मनहरणी मम प्यारी। आज भई दुक गिरा गगन में अति अद्भुत सुखकारी ॥ मोशिर भार छतो अछमम को महादुखद अति भारी। सो गिरि गयो सुनत श्रवणन अब सोवैं पांये पसारी ॥ ३२ ॥

नटी० दो० हंसिबोली पटु नट प्रिया अहो प्राण पति नाह।
कहो गिरा कौने कही कहा कह्यो यहि मांह ॥ ३३ ॥
नट० दो० हे भामिनि जग लहि सुनी यह बाणी सुख मूल।
भई पियासी चातकिनि स्वाति बूंद अनुकूल ॥ ३४ ॥

छन्द च०—जिनके यह हंसा बेदप्रशंसा पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश मई। अबिगत अबिनाशी जगत प्रकाशी रोम रोम ब्रह्मांड कई॥ सर्वा अभिरामं सब सुखधामं ब्यापक परमानंदा। जो अमितअनन्ताअजभगवन्ताअकल सच्चिदानंदा॥ ३५ ॥ जाको श्रुति गावै कहत न आवै नेति नेति कहि हाररहे। गोगिरा

अतीता चरित पुनीता भनत अनन्त न अन्त लहे ॥ जाकी यह माया जगत उपाया सब मैं सबते न्यारा। जो अगुण अनूपा बहु गुण रूपा अद्भुत रूप अपारा ॥ ३६ ॥ कोउसकै न बरनी अद्भुत करनी बिनु पद पान गौन ग्राही। बिन त्वकस्परसी बिनदृगदरशी नासा बिना घ्रानचाही ॥ जोबिनु श्रुति सुनई बिनमन गुनई बिनु जिह्वा को स्वादग्रहै। जो बिनु बपु सुंदर अचरज मंदिर बिन बानी बहुबचन कहै ॥ ३७ ॥ जनहित ब्रजबासी भोग बिलासी सगुन रूप सुखकंदा। श्री राधागोरी अनुपम जोरी रास रसिक नंद नंदा ॥ नवनीत पियारो बंशी वारो चितवन खग मन फंदा। त्रिभुवन को स्वामी अन्तरयामी रजधानी वनहन्दा ॥ ३८ ॥

दो० ऐसो जो अव्यय पुरुष सकल आचरज धाम।
बिन बानी बानी कही जन हित पूरण काम ॥ ३९ ॥

चौ०—कह्योहुपाकरि ऐसीमोहीं। सोसुनुसुखिसुनावौं तोहीं ॥ कीरति ब्रह्म नृपति बड़ भागी। जो यह राज काज अनुरागी ॥ परम कियो इन मन अभिलाषा। परमारथ मग पर पग राखा ॥ जगत विषै मिथ्या करि जानी। जैसे रबिमरीचिका पानी ॥ विषया तृषित फिरत नर ऐसे। अहंकार बस मृगया जैसे ॥ ताते यह की है यह दासी। ताहि तोरि भजिये अबिनासी ॥ मन ऐसो अनुमान कराई। ता अन्तर ऐसी बनि आई ॥ ४० ॥

सो० भूप सचिव गोपाल बीज मंच तिन दीन अस।
राज काज को जाल बहुरि नृपति तामहं फंसा ॥ ४१ ॥

छन्दभुजङ्ग—फंदा फांदतेही भजा जासु चाहा। रह्यो बीचहीमैं कियो जो उमाहा ॥ परोदारताते जुसंतप्रज्ञानी। तज्योक्षीर हंसा पियेचूकपानी ॥ सजीसैन भारी दियोजोर डंका। लिये संग केते जुहैं बीर बंका ॥ भए युद्ध केते जिते भूमि सारी। जुड़े भूप मानो हते ते प्रचारी ॥ कितेकौ

निकारे जु सम्मुख आये। किते कौ बसाये जो अपने कहाये। किते कौ भुलाये किये बंदिशाला। भयो चक्रवै बच्छ कीरत भुआला॥ बिषै भोगये तेन सक्रज्ञ कि जेते। किये वार केते नृपति नाहिं तेते॥ बज्जरि भूपके चित्तमेंशोच छाया। लग्यो रोग भारी न संतोष आया॥ परो मोह निद्रा सुपन सांच जाना। जुही राह सांची सोमारग भुलाना॥४२॥

दे० ऐसी चाह संतोष की भई भूप उर आय।
तातैं तू कछु सांतरस नृपके आगे गाय॥ ४३॥

सुगतिकाछन्द—प्रबोध चंद उद्योत नाटक गाव शुद्ध सुभाव। श्री कृष्ण भट्ट जु प्रकट कीन्हो काव्य पण्डित राव॥ चयताप अह मम नृपति को उर दहै जादू सिताब। होइ शीतल सांत पावै सुख समुद्र समाव॥ ४४॥

दो० जो कछु होत सुसंगसों विदित विश्व इतिहास।
फूलबिना नहिं होय सकै तिल ते तेल सुबास॥ ४५॥

चौ०—ऐसी बानी भईगगन मैं। सुनत भयोसुख सिंधु मगन मैं॥ ताते सुन्दर तू कर इतना। सजज्ञ स्वांग नाटक मह जितना॥ ऐसे जबहि कही नटबानी। बोली नटी सुनैना स्यानी॥ ४६॥

नटी० दोधक छन्द—नाथ बात तुम कही भली। मो मन बुद्धि न पावै थली॥ नृपकी मति विषया रसफंसी। सांत कहो कैसे उरबसी॥ ये शृंगार बीर रसरसे। योगिन के मन सांत जु बसे॥ राज भोगतहं सांत न बसै। रबि रजनी इकठां क्यों लसै॥ ए भूपति भूपन पति खरे। राज श्री सों सुबसन भरे॥ सुखको साज कहत नहिंबने। सम्पति मेसुर-पति ते पने॥ पुत्र कलत्र मित्र सन बन्धी। इनके नेह नृपति मतिबन्धी॥

दो० किमिछूटै इकबारही इनकी मति ता देव।
एबाधक सुखसांतके सतमारग केसेव॥ ४८॥

भूलना—समताग हैं सबको जानैदुःख सुःखसम आड़ा हैं

भूलना—ममता गहै सबको जानै दुःख सुःख समआड़ा है। मेटै मानमोह मगरूरी काम क्रोध सो खाड़ा है॥ छोड़ कुसंग संग सम साधै सुरत शब्द मन गाड़ा है। यों गिरकै पद चलै संत ढिग क्या तन हलुवा माड़ा है॥ ४९॥ इन्द्री जीत करै बस अपने तजै जगत की आशा है। जोड़ै प्रेम नेम साईं सों रहै दरस रस प्यासा है॥ आपामेटि गर्द करि डारै गिरदे लखे तमाशा है। यह बिधि गहै संत तब होवै यों क्या दूध बताशा है॥ ५०॥

दो० काम क्रोधमद लोभ बस विषय भोग आधीन।
तेकिमि पवैं सांति रस जाकह मुनिजन दीन॥ ५१॥

नट० अमृत गति छन्द—त्रियवों संदेह न धरिये। बिनु अधिकारी का करिये॥ यह मानुष तनहै दुर्लभ। सब साधन ते यह सुर्लभ॥ यह बहुत सुकृत ते पाई। यों निगम कहत हैं गाई॥ यह जीव सनातन हरि को। काहु मिलि माया भयो फरको॥ सोमाया बसहै कैसे। नलनीको सुकभ्रम जैसे॥ जबबहुत योनि भ्रम पावै। तब हरिको करुना आवै॥ तब नर तन देत मुरारी। यह विमल ज्ञान अधिकारी॥ करितीर्थ वर्त अनिकाही। बिन प्रभुपदरति गतिनाही ५२॥

दो० बहुत काल ते उर सदन यद्यपि अहंतम पूरि।
तद्यपि जबहि पर काशई ज्ञान दीप तब दूरि॥ ५३॥

छप्पै छन्द—अबये कीरत ब्रह्म नृपति किये भोग बिबिधि बिधि। भौ पूरण मन काम सकल लौकिक केजे सिधि॥ अरु जब ते नृप सैन करम बध सब इन कीनो। अरि भैते निर्बर्त्त भये परिजन सुख दीनो॥ अब चाहत सत संग लहि प्रभु पद रतिहि बढ़ाइये। जिमि बिबेक नृप मोहदल जीति बोध उपजाइये॥ ५४॥

दो० जबहीं नट निज नारि सों कहे इहां लौबैन।
तबहिं स्वांग मनमथ को बोलि उठ्यो पट ऐन॥ ५५॥

कामउवाच। तोटक छन्द—अति कोप कह्यो पट भीतर तैं। नट नीच कहीसो कहा यह तैं॥ नृप मोहको द्रोह कहे सठतैं। किमि जीत बिबेक सकै तिन तैं॥ जिनके हम से चढ़वाय कहैं। कर फूलन केधनु सायक हैं॥ जगमें जितने त्रिय नायकहैं। जड़मेरे सबै गुण गायकहैं॥ जगमेंजबलौंहम लायक हैं। तबलौं नृपके सुख दायक हैं॥ हम जीवत हैं जगमें जबलौं। कह मोह को जीति सकैं तबलौं॥ ५६॥

नटसुन्दरीछन्द—कामके बैन सुने जबहीं नट। भीत ह्वै नारिसों ऐसे कह्यो हट॥ कामये बीर बली बिनई अति। मोह भुआल को सूरो चमू पति॥ मोहके काम में याहि महारत। जारयौ हुतो शिवपै न जरो व्रत॥ जीति कियो इनहीं जग को बसि। सुनिहूं इनते भय भीतर हैं निति॥ मोह को हारयो कह्यो तुमते हम। सो सुनि रोष कियो रति प्रीतम॥ शंक करै इन ते जग में सब। ताते न योग इहां रहिबो अब॥ ५७॥

दो० ऐसे कहि नट बाम लै गयो काम भय भाज।
रति समेत रति पति निकसि आयो सभा समाज॥ ५८॥

सवैया—फूल नहीं के दुकूल महा छबि भूषण फूलन के अभिराम ते॥ फूलन को शिर गुच्छलसै अरू कंदुक फूलन के कर बामते॥ फूल सरासन सायक पानि भुजा रति ग्रीव रमे रस बाम ते। ऐसी सरूप मनोभव को उठि आयो है मानो बसंत के धाम ते॥ ५९॥

दो० प्रथम सभा मधि आय कै लगे करन दोउ नृत्य।
बाज उठे बाजे सबै गाय उठे नट भृत्य॥ ६०॥

कामउवाच। छन्द—बहुरि प्रियासोंबिहंसिबदन बोल्योयों मनसिज। देखो यह नटनीच मूढ़ कित गयो सभातज॥ अस ममआगे भाषि मोहजीत्यो बिबेकबर। गयो इहांते भाजि आज लेतो नत सुख भर॥ मम आज्ञा सब जगत पर जहं

लगि तन धारी जनस। जड़ चेतन तिज़ लोकके नारि रूप तर वार वस॥ ९१ ॥ परमा परम बिचिच मूढ़ मणि जटित रतन गन। नथनथ लोचन घाटसानअंजन दुधारजन॥ योबन कीन्हों सिकिलबज़रि उबटन रजमंजन। शुभग गन्ध पट पोंछि म्यान घूंघटमधिरंजन॥ जबयहनारिक्रपानममचमचमायबिकराल अति। धीर धरै असको जगंत मानज़ सत्य प्रतीत रति॥ ९२ ॥

सोमराजीछन्द—बज़रि बसन्त समय सुख राजत। सुमन बाटिका अति छवि छाजत॥ भ्रमर भ्रमत बज़चित भरमावत। गुंजत मनज़ं मोर जस गावत॥ सीतल मन्दसुगन्धसमीरन। होत बिबेकिनधीर विदीरन॥ उड़तपरागसुमन सुखदाई। लखिबिबेकधीरजउड़िजाई॥ कुज़कुज़कोकिलकहि २ कूकत। सुनत विवेक सैन सुख छूखत॥ पुनि बिचिच मन्दिरन अटारिन। शशि करनिकर रैनि उजियारिन॥ घनघमंड गरजै धुनि सरसन। दामिन दमक मंद जल बरसन॥ चातिक मोर झींगुरनि बोलन। पवन झकोरततरुवर डोलन॥ भूषन बसन लसन शुभ आसन। मृग मद केसर अतर सुवासन॥ षटरस असन सुजल सुख बासन। दरस आदरस दीप्त प्रकाशन॥ नृत्य गीत संगीत अलापन। राग बिलाप कलाप मिलापन॥ कल मृदंग ध्वनिकीधुधुकारन। सतिबिभेद सुरभेद बिचारन॥ कोमल अमल प्रिया सुख परसन। हिय छुलास मम रसकी सरसन॥ ९३ ॥

चंचला छन्द—यहबिभूतमेरी कोबांछित नरतनप्रधान। जो कदापि एकौ छिन प्रापत ह्वै ये बिधान॥ तौबिबेक को गियान कोपुरानका प्रमान। कोसमान सत्यज्ञान प्यारी तुव शीस पान॥ ९४ ॥

रतिउबाच। सुन्दरी छन्द—बीरन में तुम बीर बड़े पति। है तुमरी जगमें प्रभुता अति॥ पै पिय मोह महाबर नायक।

है चित कोमल शुद्ध सुभायक ॥ भूपविवेककठोर महातन। धीर धुरीन कहैं तिनको जन ॥ है तिनसों बहु बैर बढ़ो अब। बात भली न बुरी जबहूं कब ॥ ६५ ॥

का० चौ०—सुनि रति बचन मदन मुसुकाना। नारि सुभाव भीरु मैं जाना ॥ ताते हहरि होरहिय तोरे। कहु प्रिय जग समान को मोरे ॥ अस कौ तीनलोक केमाहीं। जो मम सरते घायल नाहीं ॥ काहि नारि तरवार न काटा। लगत नेक नैननि के घाटा ॥ ६६ ॥

सो० साक्षी प्रथम सुरेश मद अन्धन सूझो कछू।
करि गौतम कर भेष छल कीन्हों ऋषि नारिसन ॥ ६७ ॥
दुतिय सर्बरी नाथ गुरु पत्नी पहं गवन किय।
जिहि विवेक कर साथ बन्दत पद महिमा धरिय ॥ ६८ ॥

दो० जगत पिता ब्रह्मा बहुरि मम बल मानि प्रचण्ड।
तनया कहं धावत भयो को मम सम बरिवण्ड ॥ ६९ ॥

चौ०—और क्षुद्र जन कहा बखानों। सुर नर असुरमोर जनजानों ॥ काक हमैं कलङ्क नहिं दीन्हा। बांधि मोह बस काहि न कीन्हा ॥ मोपर बड़ भरोस नृप केरा। मैं बच कर्म मोह को चेरा ॥ मो जीते बिनु को जग माहीं। दाबै मोह राज की छाहीं ॥ नारि प्रकृत रति तुम भयमानी। जीति को सकै मोह को प्रानी ॥ ७० ॥

रतिरुवाच। चौ०—सुनि पति बचन जोरि युग पानी। बहुरि सुरति बोली मृदुबानी ॥ एहो प्राण नाथ मैं जाना। सत्य पराक्रम तुमजु बखाना ॥ यद्यपि सबतुमरे बसमाहीं। तुम्हैं को जीति सकै जग माहीं ॥ तद्यपि नाथ नीति अस सुनिये। रिपु कहं थोरै कबहुं न गुनिये ॥ ७१ ॥

दो० रारि रोग रिपु अग्नि ऋण नृपति तपोधन व्याल।
इतने गनिय न छोट करि सजग रहिय सबकाल ॥ ७२ ॥
सुनियत संग बिबेक के सचिव आठ बलवान।
धीर बीर गम्भीर मति स्वामी काज सुजान ॥ ७३ ॥

अरुतगतिछन्द—प्रथम सचिव यम जानौं। तिहि लच्छन दश युत मानौं। मनसा बच करम अहिंसा। अरु सत्य बचन परसंसा॥ चोरी तनमनकरि त्यागी। दृढ़ ब्रह्मचर्य अनुरागी॥ पुनिसहन शील दीनछ ते। धीरज सबका जानछते॥ अरुपरम दयालु सबनसों। कोमलहियनैनबचनसों॥ पुनि रहत पुनीत सदाहीं। अरु मिथ्या हार कराहीं॥ अब सुनिये दुतिय दिवाना। जिहि नेम नाम जग जाना॥ तिन में ए लच्छण कहिये। जिह्वादिक स्वाद न लहिये॥ अरु यथा लाभ संतोषा। संसारी सुख करि रोषा। विश्वास वेद गुरुमाहीं। अरु दाता बिनु फलचाहीं॥ अति सारबस्तु कछ सुनहीं। बछवाद विवादन गुनहीं॥ मानैसन्तनकी काना। नहिं लोकलाज परमाना॥ पूजा मानसी लगावै। करिषट दश बिधि हरिध्यावै॥ पुनि मौनरहै जपमाहीं। त्यों अजपा जाप जपाहीं॥ अरु ज्ञान अग्निके माहीं। इन्द्रिन को होम सदाहीं॥ इतने लच्छण तेजानौ। अब संची तृतियबखानौ॥

हरिगीतिकाछन्द—सम नाम संची तृतिय ताके चिन्ह ऐसे जानिये। मनको करे निग्रह अपर अभ्यास योग बखानिये॥ करिसिद्ध पद्मादिकन आसन दृष्टि त्रिकुटी महंधरैं। पुनि तत्व पांचों साधि नीकै रोगकाया के हरैं॥ ७५॥ अब कहत चौथो सचिव जाको नाम प्राणायामसो। तीनबिधि परवृत्ति जाकी अति बली गुण धामसो॥ पिंगला सुखमना ईडाआदि नाड़ी जेकहे। तिन मध्य पूरक कुम्भ रेचक बिहित करि स्वरमेलहे॥ ७६॥

चौ०—प्रत्याहार पांच योंजानौ। ताकी बिदित कथा यह मानौ॥ पांच ज्ञान इन्द्री जेकहिये। पृथक पृथक तिनके गुण लहिये॥ शब्द स्परस रूपरस गंधै। तिन्हैं उलटि आसंगत बंधै॥ षष्टम नाम धारणा कहिये। तिनको ऐसे लच्छण

लहिये ॥ पांचो तत्व भिन्न करिजानै । तामहं प्राण वायुकहँ आनै ॥ पांचोपांच दण्डपरमाना । एक २ कहँराखै प्राना ७७ ॥

हाकलिकाछन्द—ध्यान सात ये मंत्री बने । महाधीर तेजमें घने । हरिगुरुपदपंकज उरधरै । लोचन मूंदेनिरखत तरै ॥ अष्टम सचिव समाधि अहै । जगत उपाधि मेटि जो रहै ॥ आपाहू मिटिजात जहां । स्वामी सेवक भेदन तहां ॥ काल सुभाव न व्यापै जिसै । ऐसो सुनियतहै पिय तिसै ७८ ॥

दो० ऐसे सचिव विवेक के रहत सदा पियसंग ।
सुनि सभीत रतिके वचन बोले बिहंसि अनंग ॥ ७९ ॥

कामरोलाछन्द—सुनी विवेक सचिवते गुण यह अबलो सुनेन कानो । जगत जीत जिन निज वसकीन्हों महावीर बलवानो ॥ तिनके नाम सुनो अब प्यारी सुखि कहों तुव पाहीं । वीरधुरीन सूर भट नागर तिन समान कोउनाहीं ॥ ८० ॥ प्रथम एक सुहि जानो जिनते जग युवती रजुबंधे । सुर नर असुर नाग पशु पक्षी कीटहु मम मद अंधे ॥ जपी तपी मुनिवर बिज्ञानी जेते सन्त सयाने । जेबसि रहतसदा बनहीं में नृप विवेक सनमाने ॥ ८१ ॥ तिनहूं को सपने में कबहूं नारी सुरति जो आवै । तो विवेक की कान छोड़िके मेरोहीयश गावै ॥ नव यौवन अरु परम सुन्दरी हैजिनके गृहमाहीं । तेमेरे बिन दामन चेरे बेंचोंजहां बिकाहीं ८२ ॥

सिंहावलोकन छन्द—दुतिय क्रोध जग बिदित सबै । जिहि विवेक को कटक दबै ॥ जिन बस सब नर नारि जिते । विपरीत महा कहते करते ॥ ८३ ॥

तोमरछन्द—अब तृतिय हिंसा जानि । अतिही भय कर मानि ॥ पुनि चौथ मंत्री लोभ । नृप मोहके दिग शोभ ॥ नर फिरत जाके साथ ॥ है परम दीन अनाथ ॥ सद नाम पंचम जान । जाके नदुतिय समान ॥ ८४ ॥

पद्मावतीछन्द—मत्सर राई मदके भाई षष्टम सचिव सुजान । पर उतकरषै देखि कै हरषै जाको है यह बान ॥ बहु

कुटिलाई ताहि सुहाई पर निंदा बिधि ठानै। जेते तन धारी आज्ञाकारी ताके हाथ बिकानै ॥ ८५ ॥

कुण्डलिया—दम्भराय सम्भ्रम सचिव मोह मंच परबीन। छलबल में उज्वल प्रकट भीतर परम मलीन ॥ भीतर परम मलीन बचन मुख बोलत मीठे। बेष हंस को किये हरत बक जिमि झखडीठे ॥ नर नारि निरख चकृत दृहत सब शोभा आरम्भ। वसीकरन सब जगत को जीतिसकै को दम्भ ॥ ८६ ॥

कुमारलता छन्द—झूठहि अष्टम जानो। जासों जग लपटानो ॥ ख्याल झूठहो ठानै। कौथ्यौहार बखानै ॥ अर्थ निरर्थज्ञ होई। जग बिनु बोलन कोई ॥ ८७ ॥

कुं०—एक एक जगजीत सक कितक विवेक समाज। रह्यो जगत यह छायकै मोहराज अधिराज ॥ मोहराज अधिराज जीतिको सकै न आनन। ब्रह्मादिक बस जासु बसत सुनिभयबसकानन ॥ जोहम सब इकचित्तहोत्योचहै विवेक। कितक समर्थ यमादिको सम्मुख होयन एक ॥ ८८ ॥

दो० ऐसे मंत्री मोहके प्रबल बखाने काम।
तब ऐसे बूझत भई बहुरि कामकी वाम ॥ ८९ ॥

रति० सुनियत पीय विवेक अरु मोह एक कुलजात।
जैसे हैं तैसे कहो उभय भूपकी बात ॥ ९० ॥

काम० कहो प्रियाजो तुम सुनी अहै यथारथबात।
इक कुल कहा बखानिये एक तात दोउ भ्रात ॥ ९१ ॥
येदोऊ भ्राता सगे मोह विवेक सुजान।
अब सुन इनके बंशके तोसों कहों बखान ॥ ९२ ॥

चिभङ्गी छन्द—जो हरि अविनाशी सबघट बासी स्वयं विलासी आदिअहै। जो जानि न जाई अति प्रभुताई सर्व सहाई सदारहै ॥ निर्गुण निरधारा रहित अकारा अमित अपारा जाहि कहै। ब्रह्मा शिवशारद अहि पति नारद गुण गावत नहिं पारलहै ॥ ९३ ॥

दो० ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अनादि।
नित्य सच्चिदानन्दघन माया पति सर्वादि ॥ ९४ ॥

ऐसो ओं चिभुवन धनी परमैश्वर्य प्रकाश।
माया तन फेरत भयो रज्जक भृकुटि बिलास ॥ ९५ ॥

चौ०——ताते प्रकृति गर्भको पायो। सुत मन नाम प्रकट तिन जायो ॥ कहत आतमा हू मनहीको। मनहै विषय आतमाहीको ॥ उभय कछू आतम मननाहीं। एकैहैं जिमि तन पर छाहीं ॥ सोमन भयो जगत को राजा। नर्क स्वर्ग सब ताकर साजा ॥ तामनके कहिये द्वैरासी। इक प्रवृत्त इक निवृत्त बखानी ॥ ९६ ॥

दो० उपजे कोष प्रवृत्तिकी मोह आदि सबबीर।
तैसेहि गर्भ निवृत्तिके नृपविवेक मतिधीर ॥ ९७ ॥

चौ०——कहो काम जब उतपति ऐसे। पूछत भई बज्रि रति पतिसे ॥ अहोनाथ अब कहिये सोऊ। एक पिता जातक नृप दोऊ ॥ कारन कौन बैर अति भारी। चाहत दुओ परस्पर रारी ॥ ९८ ॥

काम० चौ०——सुनऊ प्रिया यह रीति सदाई। युगयुग ऐसेही चलि आई ॥ देखो कोष राजके काजै। बैर भाव भाई हू साजै ॥ करत बैर सबही जिहि हेता। सुनऊं प्रिया सो कारन एता ॥ ९९ ॥

दो० महाराज अधिराजमन उभय भूपको तात।
जासु आनि तिहुंलोक में बल प्रताप सब भांत ॥ १०० ॥

चौ०——राजा मोह हमारे स्वामी। मन जूके अतिसै अनुगामी ॥ जोवत रहत मनहिंका ओरे। सचिवे सहित सम्मुख करजोरे ॥ राजा मनजो इच्छा करहीं। ततछन नेह ताहि अनुसरहीं ॥ ताते कृपा करत अधिकाई। दीन्हीं सकल लोक ठकुराई ॥ नहिं विवेक मन आज्ञा माहीं। ताते तिन्हको आदर नाहीं ॥ दई अल्प तिनको प्रभुताई। सम्पति हीनै रहत सदाई ॥ १०१ ॥

दो० महामोह महिपालकी सम्पति विभो बिलास।
दोष मखमानत हिये ताते चहत विनाश ॥ १०२ ॥

रति० चौ०——बंधु बिरोधनारि पछितानी। रतिबहोरि बोली मृदुबानी॥ कारण कछू रहानहिं गाढ़ा। दृग्या बैर भाइन महं बाढ़ा॥ अब एचहत परस्परजीता। मनकुलकह यह है बिपरीता॥ बंधु बिरोध न भल परिनामा। यह अंकुश कुल नाशक जामा॥ अब पिय मोहिं कहिय समुझाई। मुहिं विवेक गति जानि न जाई॥ कहत विवेकहि तुम बलहीना। देश कोषहू करि अति छीना॥ मानव के आदर अतिथोरे करत विवेक बैर कहिजोरे॥ १०३॥

काम० चौ०—सुनुरति तुम पूछत जो बाता। समुझत कम्प होत मम गाता॥ कहियत एक उपनिषद् नामा। नृप विवेक की नारि ललामा॥ सुनियत तासु उदर ह्वै बालक। ह्वैहैंते मेरे कुलघालक॥ १०४॥

दो० प्रथम तासुकी सुता इक महाराक्षसी भेष।
बिद्याविदित सुमोह कुल भक्षन करहि विशेष॥ १०५॥
ह्वैहैं बली विवेक के सचिव तासु बलपाय।
सुनियत यहि बिधि जीति हैं कबहूं समय सहाय॥ १०६॥

चौ०—रति यह बात सुनी जब कानन। नैननीर पियरी भइ आनन॥ परीधरनि जनुमुर्छा आई। ह्वै अचेत बिह्वल अधिकाई॥ तबहीं काम अंकभरि लीन्हा। उरलगाइ साहस पुनिदीन्हा॥ अहोप्रिया तुमकत भयमानी। सांचकिधों यहझूठ कहानी॥ तुमकत शोचकरत मनमाहीं। कहा-जानिये होय कि नाहीं॥ जबलग मैं जीवत संसारा। जीत को सकै मोहि दलभारा॥ १०७॥

रति० दो० विद्याके सुनि दुसह गुण पिय अति कम्पत हीय।
कहिय उपनिषदते कहा ह्वैहैं बालक बीय॥ १०८॥

काम० तोमर छं०—हे भामिनि सुनबात। यह जगत है बिख्यात॥ कुलकूप खनत जोकोय। तिहि होत आगे सोय॥ वेचहतहमरो नाश। तेपाइ हैं फलतास॥ पुनिउपनिषदकेकोष

सुतहोयगो सहदोष ॥ मनकुलकमल वनचारु । ताकहँमनहुँ हिमधारु॥ प्रबोध चन्द्र सुनाम । दुःसीलता गुणधाम ॥ १०६ ॥

दो० जन्मतही ता पुत्रके जानहुं कुलको अन्त ।
कहे नाश विवेकहू संचिन सहित तुरन्त ॥ ११० ॥

रति० दो० धिग सहस्र ऐसे कुलहि रति बोली बिलखाय ।
जाकुल में ऐसे तनय प्रकट होहिंगे आय ॥ १११ ॥
विद्या अरु परबोध तुम कहे दुष्ट अति सन्त ।
इन्हे साधु सुकृती कहें कहा जानिये कन्त ॥ ११२ ॥

काम० छप्पै—जेनरखोटेचित्त रहतपर दोसदारति । अंतर परम मलीन प्रकटदर्शन उज्वलअति ॥ तिनको औगुण होत अंततिनको दुखदाई । जलपवि किरषी दलत बज्रुरि आपहू नशाई ॥ सुनु सुन्दरि जिमि अनलते धूम होत दुखदाय । काल पाय सो होय जल अनलहि देत बुझाय ॥ ११३ ॥

पंकजबाटिका छं०—यों बात कही जब काम राय । तिहि अंतर खांग विवेक आय ॥ बोल्यो पट गृहते सो रिसाय । अरु कह्यो काम प्रति इमि सुनाय ॥ रे रे सठ मन-मथ अति गवांर । तू कहा वृथा भाषै लवार ॥ रे कुपंथ गामी मलीन । सब जगत कियो तैं अन्धदीन ॥ कौन भांति हम सुनु रे मूढ़ । उज्वल प्रत्यक्ष अरु मलिन गूढ़ ॥ जोकदा-चितो है ऐसि बात । औनहीं मानतो बचन तात ॥ सत्य बचन यह है परंतु । सब कहत नीति यहि बिधिते संत ॥ तात होय कै मात भ्रात । गुरु स्वामी कै कोऊ सजात ॥ जो न करै गुण दोष ज्ञान । नहिं समुझै निजलाभ हान ॥ अ-पने कुलकी मर्याद त्याग । चलही कुसंग अरु कुपथ लाग ॥ जिनकी संगतते नरक बास । तिनते जो नाहीं करत चास ॥ ताहित्यागियेरिपुसमान ऐसोहीबुधजनकहप्रमान ॥ ११४ ॥

दो० यह मन राजा जगत को बड़े बाप को पूत ।
अपनी आप बिसारि के कियो कुसंगत सूत ॥ ११५ ॥

कवित्त। मूठी एक माटी को घरौंदा सो शरीर मन ताको कहै मेरो वपु अति अभिराम है। आगे वाके भावना हि मध्य दुख भोग यामें जानै जाको खेद बिट छम परिनाम है॥ विषय को भोग जैसे दादको खुजाये सुख अंत दुख राशि तामें मानत विश्राम है। इन्द्रिन के संग लाग्यो आपनो स्वरूप त्याग्यो कुसंग नुराग्यो यामें याको कहा काम है ११६॥

कुं०। भेड़िन में जिमि सिंहको सावक रह्यो भुलाय। तिन्हके संग भेंभें करै निज पौरुष बिसराय॥ निज पौरुष बिसराय तिनहिं के धारे लच्छन। एनहिं समुझै नेक सकल ए मेरे भच्छन॥ तैसे गोगनसंग फिरतमन पग भ्रम बेड़ी। आप अपनपौ खोय भयोभेंड़िन में भेंड़ी॥ ११७॥

दो० और बड़ो अपराध इक करत हमारो तात।
दुख पावत याते पिता सोनहिं बूझत बात॥ ११८॥

कुं०—आतम जो मम परपिता है यामन कोतात। तिन मह सो सेहअति बांध्योसुतके नात॥ बांध्योसुतकेनात मिल्यो मनहीं बसिबरते। संकठशोच अपार सहत सो मनके करते॥ सोनहिं मानत दोष परोहठि मोह महातम। नेकन समुझत बात सहत दुख मोते आतम॥ ११९॥

दो० ताते हम तातहिं तज्यो रहोंताहि सोंदूर।
खोटे चित हम क्यों भये कहूरे मनसिज कूर॥ १२०॥

कामको बचन रतिसों० सुगीतकाछन्द—सभामद्धि निर्त नछते रतिकाम सहज सुभाय। सुनत वचन विवेक केएचकि-त रहि सकुचाय॥ अवनलगिरतिसे कह्योए हैंविवेकभुआल। खीन तन अति पीन तप जप करत कष्ट कराल॥१२१॥ सुमति नाम जुवामसुन्दरि लिये रानी साथ। आयेसयुत सुनिके जुती सों कहत ये हम गाथ॥ हैं बड़े कुल माह हमते बछत पदवी॥ राज। हमहिं सम्मुख उचित नाहीं चलछ यहंते भाज १२२॥

दो० ऐसे कहि रतिपानि गहि गयो काम को भेश।
सुमति सहित आयो सभा स्वांगविवेक नरेश॥ १२३॥

परम पुनीत प्रशस्त अति महा तपोधन रूप।
राजहंस जोरी मनों मति सों बोले भूप॥ १२४॥

विवेकउवाच०रोलाछन्द—कहोविवेकसुमतिसेऐसेदेखो प्रिया तमासा। गयोकाम कैसी बातें कहिदु खआवै अरु-हांसा॥ हमको कहत कुमारग गामीये पितु बचन न मानै। पिता भक्त अरुसुजती सेवा आपन को जु बखानै॥ १२५॥

सुमतिउवाच०रोलाछं०—सुमतिकहीसुनियेमहराजाआपुन नीतसयाने। आगम निगम पुराणशास्त्र सब तुम नीकी बिधि जाने॥ बहुतक पुरुष अबुद्धि अज्ञजग आपुन अघते भारे। देखत नहीं लखत औरन के जेहैं साधु सुखारे॥ कृष्णदेव को मणिकी चोरी पिय कलंक किमि छाजै। बिना बिचार सदा सठबोलैं जिन्ह केधर्म न लाजै॥ अपनी बूझरीझ है जिनके खीझत दीने सोधन। ते उपदेश न मानत कबहूं साक्षी हरिदुर्योधन॥ परति धूर तिनहीं के मुखपर जे डारत शशि ऊपर। अपनो कियो आपही पैहैं सुयशप्रताप आपको भूपर॥ १२६॥

विवेकउवाच० कुमारललिता छन्द—अहो सुमति देखो हमैं यह परेखो॥ जहैं मन नरेशू। पिता मम सुबेशू॥ बड़ो तेजराशी। जगत को प्रकाशी॥ अहै प्रकट तिनतें। कहैं ब्रह्म जिनतें॥ जुहै निर्विकारा। अगोचर अपारा॥ नहै आदि जाको। सुअन्तहु न ताको॥ अखंडित प्रकाशी। चिदानन्द राशी॥ तरक मेंन आवे। न बानी समावे॥ निगम नेति गावे। विशेषोनपावे॥ १२७॥

दो० अति अगाध दुस्तर महा पूरण परम प्रकाश।
जाकी भृकुटि बिलास ते जगत होत अन्याश॥ १२८॥

सो० तासागर को बुन्द दाना ऐसो राशिको।
सोमन संगति मंद मोह विवस नट को बटा॥ १२९॥

सुन्दरीछन्द—मोहकी संगत में परिके मन। कीन है ऐसी विभूत बिसर्जन॥ भूले फिरै विषया सुखमें हूमि। अर्क दुहै

सुरधेनु तजै जिमि ॥ रंचक आपनपौ न विचारत । आपने भूलन आप संभारत ॥ १३० ॥

दो० अरुजे मंत्री मोह के कामादिक छल साज ।
सोदीरघ अघ करत खल इन्हेनहीं है लाज ॥ १३१

चौ०—ऐसोनिर्मल पुरुष पुनीता । अति पवित्र जाकी शुभ गीता ॥ ताकहं कोटि अनीत पढ़ाई । अति बिपरीत न जाइ गनाई ॥ तासु विवस सह संकट नाना । त्रिबिध ताप संताप बिधाना ॥ नैन अछत नहिं लखत विशेषी । कहत साधु हम तापरदेखी ॥ हम या दुखते चहत छुड़ायो । सो उन हमको छली बनायो ॥ १३२ ॥

सुमतिउवाच० दो० सुनि विवेक के बचन वर बोली सुमति सुजान ।
अति विनीत बानी बिमल मनहुं सुधारस सान ॥ १३३ ॥

तारक छन्द—सुनु राजन आपुन को यश जोई । यह कीरत और नरेश न सोई ॥ यह काम कहा करिबे को सकैसो । रति स्वारथको परमारथ कैसो ॥ तिनको नहिं औगुण आपन सूझै । सठ साधुनमें औगुण करि बूझै ॥ सठ बात न साध नहीं उर आनै । दृग हीन को दोष सुनैनहि नमानै ॥ १३४ ॥

मनमोहन छन्द—मनको स्वरूप । बरन्यो अनूप ॥ अति तेजवन्त । महिमा अनन्त ॥ जिन्हको प्रकाश । जगमें बिलास ॥ तिहिंको न योग । नृप मोह लोग ॥ तिन्ह कीन्ह मूढ़ । यह बात गूढ़ ॥ १३५ ॥

विवेकउवाच०चौ०—एशुभ चरित सुमति सुनु रानी । नर नि नारि संगति दुखदानी ॥ संशय शूल सोग श्रमजेता । नर-नि नारि संगतिते तेता ॥ अजा अंश चियहैं जगमाहीं । अवशिकरैं भ्रम नर उरमाहीं ॥ जब यह नारि संग नरपावै । काअनुचित जो याहि नभावै ॥ निज स्वरूप निरमल सुखमूला । पुरुष अजा संगतिते भूला ॥ दुःखद बारि दहत दिन राती । संकट कोटि सहत बहु भांती ॥ १३६ ॥

सो० अति पुनीत जल गंग निर्मल जग पावन करत ।
लहि कलाल को संग परम अपावन मद भयो ॥ १३७ ॥

सुमतउवाच० अर्धभुजंगी छन्द—महाराज बानी । कहीसो प्रमानी ॥ तदपि खच्च आयै । नहीं मोह भाग्यै ॥ जुहै रूप सागर । अपारो उजागर ॥ सहस सूर जाके । कनीका न ताके ॥ तहां कौन माया । कहो मोहिं राया ॥ तनक सो अंधेरो । करै ताहि घेरो ॥ १३८ ॥

बिबेकउवाच०दो० यह पवित्र आचरण मति तुम जो कही सुनाय ।
परलच्छन ताको सुनो तोसों कहों बुझाय ॥ १३९ ॥

कुण्डलिया—सत्य पुरुषते सो भई अजान दासी भाव । है परंतु आश्चर्यमय जाको अमित प्रभाव ॥ जाको अमित प्रभाव पार कोऊ नहिंपावै । रचैकोटि ब्रह्माण्ड पलक महंपुनि बिनशावै ॥ विविधि विचित्र चरित्र अमित गुण भरी निकाया । क्यों न भ्रमावै सबहि पुरुष की है यह माया ॥ १४० ॥

ब्रह्मरूपक छन्द—हैं परंतु आदि अन्त रूपवन्त पुरुषजात । एकरंगज्योंअभंगउज्वल मणिखच्चगात ॥ जोकदापि ताकेतरंग राखि जानिये । लाल पीतहरितश्यामतैसोई सुमानिये १४१॥

दो० जो विचार के दृगन ते देखै ताहि विचार ।
तौ वह उज्वल ज्योति बिनु तहां न और विकार ॥ १४२
मुकुरमाहिं जैसे सबै सबते मुकुर असङ्ग ।
तैसे माया पुरुष को संगम लगै नरङ्ग ॥ १४३ ॥

सुमतिउवाच०चौ०—अहोनाथ सरबज्ञ गुसाईं । मुहि समुझाय कहिय यह साईं ॥ पुरुष परम आनंद की राशी । अंगज तासु जीव अविनाशी ॥ कारण कौन तासु कहमाया । ऐसे सुख निधिते बिलगाया ॥ डारसंशय सागरमाहीं । सहत विविधि दुख बरनि न जाहीं ॥ पावत नहिंबिश्राम एक पल । व्याकुल भ्रमत सुलहत नहीं थल ॥ १४४ ॥

दो० कहिय नाथ यह भेद सब मोचित अति सन्देह ।
सुनि विवेक बोले बिहंसि मतिसों सहित सनेह ॥ १४५ ॥

विवेकउवाच०रोलाछन्द–ये शुभचरित सुमतियह माया-केहूंबरनि नजाई।जावत मूल याहिको जानौ अद्भुत गुण समुदाई॥ देख्यो अजा बिचारि हियेमें पुरुष प्रशंसा पूरी। सब विधि बड़ो प्रविष सबनते अति समर्थ अति सूरो॥ करै अनुग्रह मेरे ऊपर इनते जो सुतहोई। तौयह तीन लोक को अधिपति राजा कीजै सोई॥ कियो मनोरथ ऐसी माया तासों अति रति मानी। पायो अंग सुभई गर्भसे ऐसी अकथ कहानी॥ पूरण भई कामना ताकी उरआनन्द बढ़ायो। प्रकट भयो सुन्दर सुत ताते जीव नाम कहि गायो॥ विविध भांति के मन्दिर सुन्दर पांच तत्व मै कीन्हा। नव नव द्वार सवांरे तिनमें बहु बिधि शोभा दीन्हा॥ लक्षनजुंते जिते मायामें सो सब सुतहि सिखाये। कीन्हों राज ललकि त्रिभुवन को सुख दुख भोग सुहाये १४६॥

सुमतिउवाच०दो० सुमति कही यह सत्य है तुम जो कही नृपराय।
जननी गुण शुभ कैं अशुभ सुत मेंहोत लखाय॥ १४७॥

विवेकउवाच। दो० अहो दूरि दरशी सुमति पुरुष रूप की राश।
तातेहै यह प्रकट जिय तियते जगत प्रकाश॥ १४८
ताहि जीवते मन भयो मनकी रानी एक।
प्रकृत नाम जाको सुनो तासों बंश अनेक॥ १४९॥

कवित्त। रविको प्रकाश जैसे देखियत मुकुरमध्य मुकुर को प्रकाश जैसे जलको अभास है। जलके प्रकाशहूते होत जो प्रकाश तौ देख्यो परै मंदिर के भीतर उजास है॥ तैसे परमातमातें आतमा बिचारि लीजै आतमाते मन मनतें जगत बिलास है। साक्षी परमातमा अखंडित सबही के माहिं सबही तें न्यारो सदा आनंद को राश है॥ १५०॥

दो० सो आतम मनते बंध्यो परमातमा भुलाय।
मनहीं के दुख सों दुखी मनके सुख सुख पाय॥ १५१॥

छप्पै। मनके प्रथमहिं भवप्रवृत्तिते अहंकार सुत। प्रकटो ताके सङ्ग अविद्या कन्या संयुत॥ तिनसों मनकी प्रीति

अधिक छिन करतन न्यारो। उनहीं के रस मगन तातनिज इनहुं बिसारो॥ अब तिनके संग प्रीतिबस सोयो जड़ता से जपर। दीरघ निद्रामेंपस्यो भूल्यो अपनो रूपवर॥ १५२॥

कुसुमबिचित्रा छं०——अब जैसे कोउ सोवत अहै। स्वपन मांझबहुतै कछुलहै। अथवा काहू सों लरि मरै। जागे जासु प्रतीतनकरै॥ १५३॥

दो० तैसेही मन अहंसंग सोवत नींद विशाल।
जड़ता शय्या पर पस्यो देखत स्वपन कराल॥ १५४॥

कवित्त। सपने में सतोजती सुनिराव रंकसब सपने में चार दशलोकन फिरत है। सपने में मेरो तातमात भ्रात नारी सुत मेरो यह धाम ग्राम नामयों कहत है॥ सपने में भवके समुद्र मांझ बह्यो फिरै पैरत थकत पुनि बूड़त तरत है। जागे बिनुजाने नाहिं आपही सकल भयो आपही तौ निरखत आपही निरत है॥ १५५॥

दो० आप बिसार्यो आपु को आपुहि पस्यो कवलत।
आपुहि तौ दूलहबन्यो आपुहि बन्यो बरात॥ १५६॥

सुमतिउवाच। चौ०——अहोनाथ मन तात रावरो। अहं प्रेमबस भयेबावरो॥ सो सब भेद आजमैं जाना। मनया निद्रामहं सुखमाना॥ ताते असत जगत जो अहई। ताकों मनप्रतीति हठिकरई॥ अब कछु यतन करो नृपराया। जाते यह मन जाय जगाया॥ क्यों यह स्वप्न स्वप्न करि जानै। चेतन अपनो रूप पिछानै॥ १५७॥

विद्वन्माला छं०——रानी ऐसो भाषी बानी। तातेबीड़ा राजा मानी॥ माथानीचा राजा कीन्हा। ताका उत्तर नाहीं दीन्हा॥ १५८॥

सुमति० रासा छं०——हेप्रभु मोहिं कह्यो तुम आतम भेदसब। फेरन उत्तर दीन्ह सुकारण कौन अब॥ मोसन नैन चुराय रहे कह लाजसह सोच। रह्यो उरझाय कठिन क्या बात यह॥ १५९॥

विवेकउवाच। मरहटा छन्द--मति हियतें जानी कह नृपबानी एशुभ शिक्षक बाम। यामें चोरी है कछुमोरी लज्या भाषत नाम॥ आन तुम्हारी है सुहिभारी ताते मानत कान। दूजोनारी सुनत दुखारी होत हृयनकी बान १६०॥

दो० सोत स्वत्रःमी धाम सुनि होत वाम उर शाल।
ताते सकुचत हों कहत याको कारन बाल॥ १६१॥

सुमति०। शोभनछन्द——सुनुराजराज विवेकजू हैं नारि जग है भांत। एक उत्तम सात्वकी एक अधम तामसे गात॥ जिहि भांति सुख बल्लभ लहै सुइसुखद उत्तम होय। प्रतिकूल पियते सुख चहैं ते अधम कहिये तोय॥ १६२॥

सवैया। प्रीतम सुःख लहै जिनते तिनते सुख पावति हैं लखिजेई। प्रीतम हेत करै जिनते तिनते हित हेतहि तब पुनिवेई॥ प्रीतम चाह रहै चितमें विनु प्रीतम चाहत चाह न देई। है गति उत्तम प्रीतम की जिनकी जगमें तिय उत्तम तेई॥ १६३॥

दो० ममममत जेतरुनी चलैं पति आयसु प्रतिकूल।
तेगामी निज नर्कको महा पापकी मूल॥ १६४॥

चौ०—पुरुषङ्ग पिय उत्तमते कहिये। जिन्हैं नारि बसि नाहीं लहिये॥ मोबस उचित तुम्हैं नृप नाहीं। मैं प्रभु तुम्हरी आज्ञा माहीं॥ जिहि बिधि राज काज तव होई। कहिय करिय निधरक पियसोई॥ १६५॥

विवेकउवाच०चम्पक छन्द—ऐसे जब सुमति बखाना। तब राजा अति सुख माना॥ अहो धर्म्मबित रानी। यह बात जो तुम्हैं सुहानी॥ तौ भेद न तुमते राखों। सबबात यथारथ भाखों॥ इक नारि उपनिषद नामा। औरोहैं मेरेबामा॥ तिनको बहु काल बिहाने। कछुमान मोहिं सोंठाने॥ अब रहति सो मोसों न्यारी। भेंटत नहिं क्योंहूं प्यारी॥ जोयद्वा करै सहाई। मोदिग्विते वापै जाई॥ ताको मृदु वचन

सुनावै। मेरो अभिलाष जनावै ॥ बिनतीकर मानकुड़ावै। वाको लै मोहि मिलावै ॥ १६६ ॥

दो० वाके आयेपर प्रिया तुमको मानन होइ ॥
मेरे उनके रहसमें बिघन परै नहि कोइ ॥ १६७ ॥

रोला छन्द—याते धाम तम्हारे सुन्दरि तीन अवस्थाजो है। जाग्रत स्वप्न सुषोपति इनमें तुम्हरो राज सुसोहै ॥ सोमैं तुम्हैं सौंपिके चौथी तुरिया जाको कहिये। तामें जाय उपनिषद्को संगलै कछु दिना जु रहिये ॥ तहंकरता कीछपा पाय के मोको है यह आसो होय प्रबोधनाम सुततासों सुन्दर इंदुप्रभासो ॥ महाधीरज्ञानी गुण आनंदराशीसूरसुजाना। सो वह मन की नींद निशा को ह्वैहै प्रकट बिहाना १६८ ॥

सुमति० दो० जो यहि बिधि होशील निधि करै अविद्या त्याग ॥
मन याते बस आपको अरु मैं हूं बड़ि भाग ॥ १६९ ॥

चौ०—मैंप्रभु तुम्हरी आज्ञा माहीं। पितु उपकार उचित तुमकाहीं ॥ पठओ बेगि उपनिषद पाहीं। सरधा जाय मनावै ताही ॥ तासन करहु नाथ हठि प्रीती। कारजहित राजन कहं नीती ॥ शुभ कारज कह बिलम न कीजै। कामरि भारी ज्योंज्यों भीजै ॥ १७० ॥

विवेक०सो० सुनि तिय वचन बिनीत धर्म प्रेमसाने सुखद।
तुम प्रिय परम पुनीत धन्यधन्य कह हर्षि नृप ॥ १७१ ॥

दो० अब जो तुम इहि काजको भई सहायक मोहिं।
तौ सब कारज सहजही बिनु प्रयास सिधि होंहिं ॥ १७२ ॥

चौ०—अब जो यह राजा मन सोवै। अपने मांझ बहुत कछु होवै ॥ सो यह परमातन सुत कहिये। याको ऐसी नींद न चहिये ॥ यह फल अहं प्रीतिकी अहई। दुतिय मोह बहंकावत रहई ॥ कामादिक सहाय सब रहहीं। मनको जाग न कबहूं चहहीं ॥ ताते बोलि उपनिषद प्रिया। बसहो जाइ अवस्था तुरिया ॥ तासों विद्या प्रकटै जबहीं। बली होंहिं मंची मम तबहीं ॥ काम क्रोध आदिक खल जेते। मनको बहकावत हैं तेते ॥ प्रथम मारिहौं इनको लरिकै।

भाषतहौं तोसों दृढ़ करिकै ॥ पुनिहौं करौं मोहको नाशा। रहननपावै ताको वासा ॥ तबलों प्रकटबोधसुत होई। मनको बहुरि जगावै सोई ॥ जबमन या निद्राते जागै। स्वप्न बासना नीकै त्यागै ॥ अपनो प्रथम स्वरूप पिछानै। आप आपने तातहि जानै ॥ जबते जिय मायाते जन्मा। जानत नहीं तात को मर्मा ॥ माया नश्वर खेल खिलावै। तातें तात सुरत नहिं आवै ॥ जगत पिता जो हरिभगवाना। तिनहूं याकहं खेलत जाना ॥ तातें कबहूं चाहत नाहीं। यह विधि बीच रहे पितुपाहीं ॥ बिष्णु भक्ति परमातम प्यारी। परम कृपाल जगत हितकारी ॥ उनसों तब इनकी सुधि दीजै। उनके सङ्ग आतमा कीजै ॥ हरिसोंलै हरिभक्ति मिलावै। तब अपनो मरयादहि पावै ॥ बिष्णु भक्ति जब इन्हहिं दिखावै। तब सुतलै पितु कंठ लगावै ॥ पुत्र पिताकी बैठे गोदी। होय परम आनंद बिनोदी ॥ पितापुत्र मिलि होय भलाई। होय दशहु दिशि अनंद बधाई ॥ पिता पुत्रदोऊ मिलि रहहीं। नित्यानन्द परम सुख लहहीं ॥ यों आतम परमातम भेंटै। पिता पुत्र को कंठ लपेटै ॥ १७३ ॥

सुगीतिकाछन्द—यहि भांतिते हित तातको हम कियोहै निरधार। नाशकरि अतिदुखद यहसब मोह को परिवार ॥ हमहुं प्रण ऐसो कियो जब मन लहै निजठांव। तब त्यागि नश्वर देहवाही ब्रह्ममाहिं समाव ॥ १७४ ॥

सुमति०चौ०—नाथमंथजोकछु तुम कीन्हा। सोमैंहूंमाथे धरि लीन्हा ॥ जब प्रभु आप देह यह छोड़ी। तबमैं रहिका करौं निगोड़ी ॥ तातें मैंहूं यहदृढ़ कीन्हा। नाथ साथचाहौं तन दीन्हा ॥ नाथ बिरह उपजी बिरहागी। जरिहौं तुरित चरण अनुरागी ॥ १७५ ॥

विवेक०दो० धन्य तुम्हारी गति सुमति मोहिं भरोसो तोर।
चलो समादिक को बिदा करिये तीर्थन ओर ॥ १७६ ॥

यहि विधि-मति सों मंच करि गयो विवेक भुआल।
गाय उठे नट शिष्य तब बाजे तंत्री ताल ॥ १७ ॥

इति श्री प्रबोधचन्द्रोदय नाटके भाषायां प्रथमःटङ्कः ॥ १ ॥

———oo———

नट० दो० तब नृपकीरत ब्रह्मसों बोल्यो नट सरदार।
राजन राजा मोहने सुन्यो विवेक विचार ॥ १ ॥
ताते अपने मंचनकुं आज्ञा दीन्ही मोह।
करिये यतन विवेक की मंत्र सिद्ध नहिं होह ॥ २ ॥
ताही अंतर दम्भ को आयो स्वांग सवांरि।
तिन पट मंदिरते कह्यो ऐसी भांति पुकारि ॥ ३ ॥

दंभउवाच। रंगिकाछन्द—महाराजअधिराजमोह दीन्ही यह अज्ञा। कीन्हीनृपति विवेकने ऐसी परितज्ञा ॥ बोलि उपनिषद् को चहत परबोधहि उपजायो। ताकरि हमको पुनि चहत कुल सहित नशायो ॥ अपनी सैन सहाय सब तीरथन पठाई। यह सुधि सुहि दुर्वासना सब आनिजनाई ॥ ताते योधा हैं जिते मेरे भट मानी। सजग होउ सब छोड़ि कै निद्रा अलसानी ॥ पहिरो बखतर अंगकसौ परि कर दृढ़ करिकै। अपने अपने अस्त्र लेउ सब सानन धरिकै ॥ निशिदिन रहौ सचेतशत्रु बल बढ़न न दीजै। प्रथमतीरथन मांझ जाय निज थाना कीजै ॥ अरुजो हैं मैं दम्भ नाम सेवक नृपकेरा। सोमोको यों कह्यौ करउ काशीमें डेरा ॥ मुक्ति पुरी तिहि कहत सदा शिवको अस्थाना। विपुल विवेकी रहत सिद्धि साधक विधि नाना ॥ तिनके जपतप नेम विघन तुम करउ भेद से। अपने बस करि तिन्है विमुख करि देउ वेद से ॥ करौ बास अस्थान मुख्य अब वह थल मेरो। या विधि ते अधि कार अधिक ह्वैहै तबतेरो ॥ ४ ॥

दो० सोहो नृप आयसु अकनि बसिहौं काशी जाय।
सजग होउ औरो जु कोउ लोन नृपतिको खाय ॥ ५ ॥
सुनतहि बानी दम्भकी नटवर परम सुजान।
कही मजलिस में किशे काशी इक अस्थान ॥ ६ ॥

अर्धभुजंगी छन्द—कहूं भेष पंडित। तिलकभाल मंडित॥ जुधोती उपरना। कमलपत्र बरना॥ जनेऊ पुनीता। लिये हाथ गीता॥ बचन जे प्रमाने। कहैं प्रेमसाने॥ किते जन प्रबीने। सुनेकान दीने॥ ७॥

पद्मावती छन्द—कहुं बैरागीहरि अनुरागीतिलक छाप छवि छाजै। कंठी माला सुमिरन आला कर में ललित बिराजै॥ बिहंसित नैना विह्वल बैना सिथिल प्रेम मद माते। हरिगुण गावैं तालबजावैं उपदेशैं बहुभांते॥ ८॥

हाकलिका छन्द—केतक भेष मुनिन के बने। शोभित हैं तप तेज सने॥ जटा जूट माथे पर लसे। भस्म अंग कोपीन कसै॥ कोऊ मौनहिं माला जपै। कोऊ पञ्चअग्नि को तपै॥ कोऊ बाहैं ऊंचीकिये। कोऊ चितवत रविटग दिये॥ ९॥

चौ०—ऐसेखांगविवेकिन केरे। बनि बनि बैठे बेषघनेरे॥ सबतै गिरो जु सबते ऊंचो। टूक अस्थान कियो अतिसूचो॥ तहांएकराख्योसिंहासन। आयदम्भकीन्हों तहंआसन १०॥

कुसुमविचिचा छन्द—लम्बीधोती कटितट लसै। नामाङ्कि-तजु उपरना लसै॥ टोपीअति चटकीली लाल। छापा तिलक बिराजत भाल॥ चारु जनेऊ अरु उरमाल। नैन रसीले बचन रसाल॥ इतउत धरी जु पोथी घनी। तकिया गादी उज्वल बनी॥ ११॥

दो० भक्त भेष मग सुभग अति चलत विवेकी सार।
ताही में लुकिके मनो बैठिरह्यो बटपार॥ १२॥

चौ०—शोभा दम्भ जाय नहिं बरनी। सहत लपेटी मनहुं कतरनी॥ दम्भ शिष्य है कपट सयाना। ठाढ़े सम्मुख जोरे पाना॥ चेटक नाटक जानैं घने। जाने तुरित कामना बने॥ अपनी विद्या अरु पंडताई। सर्व्वज्ञता और सिद्धाई॥ जैसे बालमीक अरु व्यासा। शिष्यनके सुख कियो प्रकासा॥ दरशन को आवैं नर वामा। करैं दूरतें दण्ड प्रणामा॥

उत्तम दरशन कृपा मलीना। मनसा रह्यो बिषै आधीना ॥
ऊपर भेष हंस को कीन्हे। करनी बायसकी चित दीन्हे ॥
सुन्दर केकी अस्तुत बानी। जैसे अहि भोजन रुचिमानी॥ तैसे
ऊपर दम्भ लुनाई। भीतर बिषै बासना छाई ॥ ऊपर भेष
भक्त अति प्यारो। भीतर भक्ति भावते न्यारो॥ जैसे साधू जन
संसारा। कमल पत्र सम रहैं नियारा॥ तैसे दम्भ भक्त के
भेषा। भक्त भावकी लगी न रेखा॥ ऐसे दम्भ बैठि सिंहा-
सन। देखत गंग तरंग बिलासन ॥ १३ ॥

दो० तबहिं स्वांग हंकारको पटतें प्रकट्यो आय।
दृष्ट बिप्रके भेषसो निपटहि तीव्र सुभाय॥ १४ ॥

अर्धभुजंगीछन्द—भौहैं चढ़ाये। नैन रोस छाये॥ जुका
हूं निहारै। मनहुं ताहि मारै॥ जो बोलै दुलारी। मनहुं देत
गारी॥ लिये आतुरी को। चल्यो शिवपुरी को॥ गयो गंग
तीरा। गह्यो नाहिं धीरा॥ तहां रास कीन्हा। तरुणी न
लीन्हा॥ परे कूदि जलमें। बसन लै बगलमें॥ सुबूड़त उछरि
कै। भये पार तरिकै॥ तहां गंगसेती। कही बात केती॥
कितक तू बिचारी। तरै सिंधु भारी॥ १५ ॥

नगखरूपनी छन्द—लख्यो महंत दम्भनै। कह्यो सबै सभा
सुनै॥ अहो लखो पुमान को। नहीं कछू प्रमान को॥ इका
इकी दिमागसों। जरै अनीत आगसों॥ १६ ॥

दो० आवत राधा नगरतें जान्यो परत बिचार।
जहां बसत बज्रतामसी छली छिनार लवार॥ १७॥
वाही नगरी में करत ममपर पिता निवास।
तिनकी कछु सुधि पायवी याराहीके पास॥ १८ ॥

भुजंगप्रयात छन्द—तहां सेजु आपै चल्यो छिप्र आगे।
लख्यो पंडित न को कथा प्रेमपागे॥ कह्यो ए अपाने नहीं भेद
जानै। कहो बेद पढ़िकै कहा दृष्टि आनै॥ दादुर यथावकि
वृथाजन्म खोवै। कहो बारिधरिके कहाधौं बिलोवै॥ जुहैभोग
परत्यक्ष आराम जिनको। रहे दूरि तिनते कसैं देहमन को॥

सुनै जो कहानी परे मूढ़ लेखै। नैन मूंदिके मुक्तिकी राह देखै ॥ १९ ॥

दो० पुनि आगे चलिके लख्यो वैर गिन को यूथ।
स्वच्छ भेष बानी बिमल मानो हंस बरूथ ॥ २० ॥

छीरा छन्द—कोऊ हरि गुण वर्णन करै। कोऊ सुनि सुनि उर में धरै॥ कोऊ बैठि कीरतन करै। प्रेमानंद सिंधु उर भरै। कोऊ कृष्ण नामको रटै। कोऊ अर्चन बंदनकरै॥ कोऊ चरण कमल चित धरै। विविधि भांति सेवा बिस्तरै॥ कोऊ दास भावको धरै। प्रभुकी इच्छा सोई गिरै॥ कोऊ सखा भावको गहै। अंतर गति हरिसन गहि रहै॥ कोऊ तनमन धनको अरपै। होहिं निछावर राधा बरपै॥ यहि बिधि भक्ति करै बैरागी। देखी तिन्हे आगिसी लागी॥ २१॥

दो० तिन प्रति लाग्यो कहनयों ए सठ मंद बिचार।
ताही ते बिहबल बिकल रहत सहत श्रम भार॥ २२॥

चंचला छन्द—जो प्रत्यक्ष देह जाहि नित्यही प्रमानिये। कहै अनित्य ताहि याहि अंत वंत जानिये॥ जु देखिये न अनताहि लक्षकै अलाप हीं। कहैं सुनीत धामयौं अकाश नाप थापहीं॥ २३॥

दो० वेद वचन इनके मते भ्रम निरवारन हार।
मोमत इन बपुरेन को कियो भरम को जार॥ २४॥
ऐसे कहि पुनि कूदि के आगे चल्यो बहोर।
तपसी गनके भेष तहं देखि हंस्यो अति जोर॥ २५॥

सुप्रिया छन्द—यों चोर ज्यों सब देखिये। बिनकिये दण्ड बिशेषिये॥ कछु अन्न बस्त्रन पावहीं। तिहि हेत तप तन तावहीं॥ जो भोग स्त्री आदि है। इनके करमते बादि है॥ ए मूढ़यादी जोग हैं। मानज्ञ सदेही रोग हैं॥ देखत इन्हें संताप है। जरि आपनेही आप है॥ २६॥

दो० ऐसे होहरि भेषकी निन्दाकरै विशेष।
आगे चलि हर्षित भयो दम्भ धामको देख॥ २७॥

हरिगीतिका छन्द—कितेदम्भी तहां बैठे भेष शुभ

बनायकै । कोऊ यज्ञ समाधि आगे अग्नि कुण्ड बनायकै ॥ कोउ दृग छपाये ध्यान लाये सुरति श्रवण उचायकै । कोउ रहै अधरसुलिये माला चित्त बाला लायकै ॥ २८ ॥

कलहंस छन्द--आवत जात घनेरे लोग । मूरत धारी मानौ भोग ॥ कहूं होम धूम परकाश । रही सुगन्ध फैलि चहुंपास ॥ २९ ॥ अतिही उज्ज्वल धोये बास । जहां तहां सूखे आकाश ॥ सिद्धाई बरनै सबकोय । जो कछु कहैं सोई कछु होय ॥ जापर किरपा करैं गुसांय । अन्न धन्न ताके अधिकाय ॥ केतिक बांभन पाये तात । जानिलेत अन्तरकीबात ३० ॥

चौ०--तहं अहंकार आइ भयोठाढ़ा । दंभ दङ्गल उत्तम लखि गाढ़ा ॥ कह्यो कि जानिपरत यहि धामा । है कोउ महापुरुष अभिरामा ॥ इनसब तत्व भेद कहंजाना । पोषत तनको भलो विधाना ॥ ह्यां विश्राम कछुक दिनकीजै । बहुरि और दिशिकी सुधिलीजै ॥ ३१ ॥

दो० अहंकार यहि भांति कहि गवनो भीतर गेह ॥
निकट दम्भके जायसो कही अशीषा लेह ॥ ३२ ॥

दम्भशिष्यउवाच० कलहंस छन्द--उठे पुकारि दम्भके दास । देखि बिप्रको आवत पास ॥ अरे निकट मतिजाहि महन्त । कहेा दूरिते आशिषवन्त ॥ ३३ ॥

अहंकारउवाच० हाकलिका छन्द--अहंकार दम्भको-लखिकै । कौनदेश यह कह्यौ अनखिकै ॥ यहां बिदेशी मन नहिं लहैं । बड़े कठोर चित्त नर रहैं ॥ ३४ ॥

दम्भउवाच० भुजङ्गप्रयात छन्द--समाधान करसो कियो दम्भताको । कह्यो दाससेती नहीं दोष याको ॥ कहूं दूरदिशि ते कियो इन पयाना । हमारे धरमको नहीं भेद जाना ॥ तहां याहि पूछो कहा कुल मर्य्यादा । भयो बिप्र आपुहि किधौं बाप दादा ॥ धुआवो चरण हाथ याको सुनीरा । जुआवै निकट पूछिये कौन पीरा ॥ ३५ ॥

अहंकारउवाच० रोलाछन्द—तुमको नहीं बिदित कुल मेरो मैं सब कुलके ऊपर। आवतहीं अस्थान बड़ेते राजा नगर जु भूपर॥ अहंकार ऐसे उत्तरदै पग मगरज लपटान्यो। चल्यो दंभ आसन पर बैठन तनिको कान न मान्यो ३६॥

दंभउवाच० सुगीतिकाछन्द—तब कह्योदंभ रिसाय क्यों रे मूढ़ समुझत नाहिं। बिना धोये पांय आवत कहा मेरे पाहिं॥ कहं छीट तेरे अंगते मम बसन परहिं अचेत। तब बहुरि मोहिं स्नान करिवो परहि बस्त्र समेत॥ ३७॥

अहंकारउवाच० कलहंसछन्द—अहंकार हंसि ऐसे कहा। बहुत देश मैं भरमत रहा॥ ऐसीबातैं अद्भुत नहीं। काननसुना नैन नहिं लहा॥ ३८॥

दंभशिष्यउवाच० कुसुमबिचिचाछन्द—दंभशिष्य उठि बोल्योताहि। अरे बिप्र तू जानत नाहि॥ परे रहतह्यां भूप अनन्त। छुअन न पावत चरण महन्त॥ तोसे दीन भिखारी छूंछो। काहू कबहि महंत न पूछो॥ तोपर कियो गुसाईं हेत। तोसों बोले प्रेमसमेत॥ अबतू मतिहि करै बकवाद। देहि दूरते आशिरबाद॥ ३९॥

दो० अहंकार यह बात सुनि उर कीन्हों अनुमान।
भलो कियो यह देश बसि दंभ परत असजान॥ ४०॥

सो० बैठन लग्यो बहोरि अहंकार ढिग दंभके।
दंभ शिष्य करिसोर ताकहं पुनि डांटत भये॥ ४१॥

दंभशिष्यउवाच० चोटकछन्द—अरे ब्राह्मण तू नहिं बात सुने। हम तोहि कियो यक बार मने॥ यहि आसन के सब पांय परैं। ह्यां बैठिकै जाप महंत करैं॥ ४२॥

अ० दो० अहंकार अलगर्जसों तिनको कह झिझिकार।
रेमूरख मोते नहीं बड़ो महन्त तुम्हार॥ ४३॥

कुसुम विचिचा छन्द—तुमको बिदित नमेरी बात। सुनो

कहो अपनीही ख्यात ॥ जननी मेरी अति गुणवंत । भई नीच कुल प्रकट परंत ॥ मैं कुलऊंचो कियो विवाह । जैसो ऊंच हिमाचल आह ॥ ताते पदवी मेरी बाढ़ । भई बापहूंतेअति चाढ़ ॥ ऊंचनीच जेतक संसार । सबपर है मेरो अधिकार ॥ औरोकहैं सुनौदै कान । इतनीमोहि लाजकी आन ४४ ॥

चौ०—मेरो साढ़ू एकसगोई । ताकोकुछ तौ मिचदूक कोई ॥ ताको मित्र तासुको मामा । ताकेकुलती सुता कछु नामा ॥ ताकहं झूठ कलंक लगाई । काहू कही सुमैं सुनिपाई ४५ ॥

दो० सुनतहि सुधि लज्जा भई उपजी बड़ी गलानि ।
राज साज धनधाम तजि उठिआयों यों जानि ॥ ४६ ॥

निशिपालिका छन्द—एकदिन ब्रह्मबर सभामधि मैंगयो । देखि विधि मोहि उठि तुरत ठाढो भयो ॥ और सुर सिद्ध गन सभा मधि जेरहे । आय सब धायकर पांयमेरे गहे ॥ आनि तहं कनक की चारु चौकीधरी । मोहि बैठ न लिये बहुत बिनती करी ॥ मैं कही अमितै शुद्ध यह कीजिये । धोय पुनि गंगजल याहि तब छूजिये ॥ ४७ ॥

दो० तबब्रह्मा निज जघन कह गंगाजलसे धोय ।
बैठाख्यो मुहि बिनय करि रहे चकित सुरहोय ॥ ४८ ॥

अ० दो० अहंकार चितमें कही नीको दम्भ लबार ।
कहां आप नरबपु धरे कहां ब्रह्म आगार ॥ ४९ ॥
कह्योकि तूइक ब्रह्मके आदर चरन समाय ।
कोटि कोटि ब्रह्मा सदा परे रहत मम पाय ॥ ५० ॥
रहत सदा भयभीत ह्वै चितवत भृकुटीमोर ।
मैंकबहूं स्वपने बिषै तकत न तिनकी ओर ॥ ५१ ॥
दम्भउक्त करिकै लख्यो यह नर बड़ो उदार ।
जानि परत मम परपिता है यहजू हंकार ॥ ५२ ॥

कलहंस छन्द—उठि दंभ तब पायनपर्यो । अहंकार अंक मलै भर्यो ॥ सुखपेंछिकातीलायकै । कहिकुशलप्रश्न बनायकै ॥

बहुकालते अन्तर रह्यो। सुततोहि मैंद्वापर लह्यो ॥ ५३ ॥

अ० दो० तब सुततूबालक हुतो भयो तरुण यहिकाल।
जठर भयों मैं तासुतें चीन्हपरो नहिंहाल ॥ ५४ ॥

मोहनछन्द०प्रत्युत्तर--कहि सुत सुत तुव अनरथ नामा। कुशल क्षेमहै कहु केहि ग्रामा ॥ कहु तुव पिता लोभ सुख माहीं। रहत सहित तृष्णा किहि ठाहीं ॥ कहे दंभ परताप तुम्हारे। मम समीप सब रहत सुखारे ॥ ५५ ॥

अ० दो० येसुतया नगरी बिषै आवत बहुधा दृष्ट।
नरसेा कहु किहि भांतितें ह्वैहैं हमते भ्रष्ट ॥ ५६ ॥

दंभउवाच०सुन्दरीछन्द—दंभकहीतुमजानतहौसबाराज विवेककियो जुमतौ अब ॥ चाहत हैं बसि या नगरी मधि। कीजै उदै परबोध कलानिधि ॥ होत उदय तिहिके कुलकी गति। जानतहौबिपरीतबड़ी अति ॥ एजुलखे तुम आवतकै नर। हैं पठये सुबिवेक बली बर ॥ इनकौ मिलिकै हम चाहत हैं इमि। होय प्रबोध उदै न करै तिमि ५७ ॥

अ० दो० अहं कही अब इनविषै बाढ़ो बैर अपार।
नृप विवेक अरु मोहदोउ कियो चहत तरवार ॥ ५८ ॥

दं० सो० दम्भ कही हेतात अवसि बात यह मिटत नहिं।
भली करी यह घात आये आपहु नगर यहि ॥ ५९ ॥
आवन चहत नरेश आजकाल्हि मह मोहहू।
अब यहपुरी स्वदेश राजथली निज नृपकरी ॥ ६० ॥

दो० अहंकार अरु दम्भ की भईइती बतरानि।
तबहिं स्वांग नृपमोहको प्रकट्यो पटते आनि ॥ ६१ ॥

मनमोहनछन्द—इक बेत धार। आयो अगार ॥ कंचनि बिचार। बोलो पुकार ॥ ऐ नरहु नारि। करिके सिंगार ॥ अति सावधान। सब सुनहु कान ॥ आवत धिराज। महा मोह आज ॥ मगपंक धूर। सब करहु दूर ॥ गृह प्रति दुवार। सबकरहुचार ॥ सौगन्ध सीच। वीथिनिनबीच ६२ ॥

भुजंगप्रयात छंद—सुवस्त्रं धरे मुकट मैं रत्न कारी।

बड़े राजसी ठाट सों कूच धारी ॥ बड़ी धूम सेती पुरी मध्य आये। जहां दंभ आदिक प्रथम स्वांग गाये ॥ तहां मोह राजा सिंहासन सुहाये। अहंकार दंभज तिन्हैं शीघ्र नाये ॥ सभा जोरि बैठे महा मोह राजा। खड़े बेत पानी चमर कूच छाजा ॥ तहां भूपने चित्तमें शोच कीन्हा। करो चाहिये जग विवेकी बिहीना ॥ कही दंभको देखिकै भूप ऐसे। कहो या पुरी के समाचार कैसे ॥ ६३ ॥

दंभउवाच०चोटक छंद—कर जोरकै दंभ कही उठिकै। परताप तिहारो बली सुठिकै ॥ यहि दासको बास भयो जबते। महाराज की आनि फिरी तबते ॥ प्रभु आयसु के अनुसार सबै। नहिं नेक बिवेक की ओर दबै ॥ ६४ ॥

दो० कछुएक लोग विवेक को तजन आपनी बान।
परे रहत सो दीन जिमि नहिं तिनको सनमान ॥ ६५ ॥

चौ०—दम्भ बचन सुन नृप हरषाना। कछुइक शोच बहुरि उर आना ॥ शिर नीचे करि कीन्ह बिचारा। अरि के लोगन चहिय निकारा ॥ कितौ आपने बसि करिलीजै। इकछत राज आपनो कीजै ॥ ६६ ॥

दो० अस बिचारि हंसि दम्भसन बोल्यो मोह नरेश।
लगे विवेकिन प्रतिकहन कछु अपनो उपदेश ॥ ६७

मोहउवाच०संयुताछन्द—एमूढ़सेनर देखिये। दृगअछत अंध विशेखिये ॥ यहदेह जीव न मानहीं। जियदेह बिलग प्रमानहीं ॥ जोबस्तुहैकछुवैनहीं। तिहिकहतहैंनिश्चयसही ॥ जहि प्रकट दृष्टि प्रमानिये। तेहिकहत मिथ्यामानिये ६८ ॥

दो० और कहत यादेहतौ पांच तत्व तें होत।
आतमहै याते जुदो ताकों बड़ो उदोत ॥ ६९ ॥

कु० छन्द—सोमैं नीके निरनय कियो। पांच तत्वते अपरनबियो ॥ पांच तत्वमें सब जग अहै। विविधिप्रकार होय सुख लहै ॥ देह देह ते प्रकटत रहै। नरते नर पशु ते पशु

लहै ॥ पक्षी पक्षी ते जुदा रहै । दृष्टदृष्टते उपजतअहै ॥ ताते आतम दूजो नहीं । देह आतमा एकै सही ॥ ७० ॥

दो० और कहत यह देह जड़ आतमसों चैतन्न ।
सो सब झूठ सुनौ कहौ जैसे भिन्न अभिन्न ॥ ७१ ॥
होत एक सब तत्व जब तब चैतन्य लखाय ।
एक एक अलगहि रहत तब तिनमाहिं समाय । ७२ ॥

चौ०—जैसे चूना कत्थ सुपारी । पान मिलाय वस्तु ये चारी ॥ चारो वस्तु एक जब होहीं । रंग लाल तब प्रकटत योहीं ॥ जब लगिहैं चारों अलगानी । तब लगि लाली रहै छपानी ॥ यों जो कहत आतमा दूजी । सो सब झूठ देह सब पूजी ॥ ७३ ॥

दो० अरु ये कहत किवेद में चार वरण परमान ।
पृथक पृथक तिनके धरम सो सब झूट निदान ॥ ७४ ॥

सोमराजी छन्द—जेते नर सब एकै भायन । तैसे हाथन तैसे पायन ॥ तैसे नैननतैसे आनन । तैसे नासातैसे कानन ॥ तैसी सुनानि तैसिये हेरन । तैसे अंग सकल कछु फेरन ॥ कहा चिन्ह कहिये तिन गातन । जाते भये बिलग सब जातन ॥ ७५ ॥

दो० अरु परतिय रति परदरब तासह दोष लगाय ।
डरपावत सब जगत कहं यामह कहा नसाय ॥ ७६ ॥
परतिय पर सम्पति विषे कहो कहोहे भेद ।
रंग अंग गुण एक सब कहा बतावत वेद ॥ ७७ ॥

चौ० कहा दोष है हिंसा माहीं । कहा दोष है मांस न खाहीं ॥ मांस मांस ते पुष्ट जु होई । यामें है अपराध न कोई ॥ ७८ ॥

छप्पै । जे सुनत पुराण वेद निज जगत भुलायो । बहुत विवेकीठगे मूढ़ करिके बौरायो ॥ ताके वचन प्रमान भोगते हत उदासी । तजिसबही सुवरान चंदबदनी अबलासी ॥

मुक्ति मुक्ति हठ करत भेद कछु जानत नाहीं। मम बिचार है मुक्ति मरन या जगके माहीं ॥ ७९ ॥

दो० । जब या जग में मरत है तब सबकी गति होय।
काहेते फिर तासु को चिन्ह न दीखत कोय ॥ ८० ॥

कु० छन्द—अरु जो करत आतमा नित्य। सो कछु दूजो नाहिन मित्य ॥ पांच तत्व जूअहै प्रत्यक्ष। सोइ नित्य जुदि-खियत अक्ष ॥ ताते जीवन को फल अहै। निशिदिन सुखमें बीतत रहै ॥ खानपान अरु राग रंग। सुंदर मृगनैनिनको संग जिहि तिहिभांति शरीर तुट। करिये यह सिद्धान्तपुष्ट ८१ ॥

दो० । ऐसि भांति तब बतकही करत मोह महिपाल।
चारवाक को स्वांगदूक बनिआयो तिहि काल ॥ ८२ ॥

तो० छन्द—दूक शिष्य ताके साथ तासो कहत यों गाथ ॥ ये सुत निगम परमान। कबहूं न कीजैकान ॥ यामें कछु नहिसार। यह सकल झूठ बिचार ॥ ये कहत यों जु बनाय। मखकार सुर पुर जाय ॥ सो निपट थोथी बात। छिय समुझ देखु तात ॥ जो अग्निके सुखमाहिं कौबेल द्रुम जरि जाहि ॥ ताते चहिय फल फूल यह निपट सठना मूल ॥ ८३ ॥

दो० । अरु सराध जो करत नर सोलखि हो अतिहांस।
करत कहा दीपक बड़ो पूरै तेल प्रकाश ॥ ८४ ॥

शिष्य० चौ०—शिष्य कही सुनिकै गुरु पाही। नाथ निगम जोपै मिथ्याही ॥ तौ यह मोहिं आचरज भारी। काहे सुनि बर रहत दुखारी ॥ तजिकै भोग भामिनी आदिक। खान पान खट रसहूं स्वादिक ॥ भूषण बसन सुगंध सुहाये। राग रंग नहिं जाहिं मनाये ॥ रहत अकेले बनमें माहीं। भोजन कंद मूल फलखाहीं ॥ बल्कल बसन बिभूतबिभूषन। गावत राम नाम निर दूषन। यहि बिधि कष्ट करत अतिभारी। जपतप होम वेद अनुसारी। जानन हेत ब्रह्म अविकारी। जाते श्रेठ कहत यह सारी ॥ ८५ ॥

चा० दो० । चारवाक हंसि के कह्यो बेद बनावन हार ।
परम कौतुकी है कोऊ जिन भुरयो संसार ॥ ८६ ॥

कलहंस छन्द—ऐसो लालच कह्यो बनाय । सो बिधि तोहिं कहों समुझाय ॥ जैसे जोकौ प्यासी तोय । मिष्ठ नीर ढिग बैठी होय ॥ कोऊ कहे ताहिसों जाय । यह जल अतिदुर-गंध बसाय ॥ मैं जल आछो देउ बताय । रबि मरीच कहं देइ दिखाय ॥ जब वह वामैं अति श्रम पाय । तब वह वाको लखि हरखाय ॥ कियो चाहिये कछुक विचार । क्यों नहिं उपजै हांस बिहार ॥ कहां सैन सुंदर परयंक । नारि न-बेली लैकै अंक ॥ कहां रहै बनमाहिं अकेल । परै भूमि मृग छाला मेल ॥ षटरस व्यंजन विविधि प्रकार । कहां मूलफल फूल अहार ॥ कहां मृदुल पट सुखद शरीर । कहहु कहां बलकल के चीर ॥ ८७ ॥

दो० । कहे जुयाते स्वर्ग ह्वै निरत बिषय ते जात ।
प्रकट देखियत हौं तिन्है नर्क समान बिहात ॥ ८८ ॥

मो० तो० छं—यह चारवाक बतानि । नृपमोह सुनिकै कानि ॥ हिय मैं कह्यो हरषाय । यह नर सुजान लखाय ॥ इक बेत पानि हंकारि । कह लेहु याहि पुकारि ॥ तब आय भूप अगार । किय चारवाक जुहार ॥ ८९ ॥

दो० भूप कही तुव बचन सुनि मैं अति भयो प्रसन्न ।
कितते आवत कौन तूं कहा नाम तुम धन्य ॥ ९० ॥
चार वाक कर जोरि कै कह्यौ आपनो नाम ।
शुभ चिन्तक या धाम को हैं मैं आदि गुलाम ॥ ९१ ॥

चा० रो० छन्द—कछुक संदेसी दैकै मोको कल युग यहां पठायो । कही आपको बहुतै बिनती महिलों शीस नवायो ॥ ता पाछे यह कह्यो मोहिं प्रभु बिदा कियो या-लीने । सीस बही परताप आपके बचन अकन मैं कीने ॥ कछू शेष कारज है सोऊ अब करि कृपा तिहारी । आय देखिहौं चरण कमल को कछु दिन गये पछारी ॥

मोहउवाच—राजा कहै। कह्यो करिब्यौरा कितक काम बनि आये। मोहि सुनाव कितक बाकी अब कलियुग तोहि बताये॥

चारबाकउवाच—चारबाक कर जोरे बोल्यो बेद पंथजो कहिये। सेा अबक्योंहू चलननपावत तहां बिवाद नलहिये॥ नर सब प्रीत परस्पर तजि कै बिचरत कुल को लीन्है। चेला गुरू पिता भ्राता सुत आप स्वारथी कीन्हे॥ करत आपने तनको पोषन सब अपनो रुचि जानी। पूछत नहीं धरमको कोऊ अधरम सों रुचिमानी॥ चारों बरण करम अपने तजि अकरम कर मन करहीं। सेवा खेती बनिजबिप्र बर शूद्र वेद उच्चरहीं॥ अरु तीरथ कुरखेत आदि बहजुते विवेको भारी। सेासब दये निकासि तहां अब डौंड़ी फिरत तिहारी॥ नहिं अब सोच विवेक औरतौ कछु राजन उरआवै। है सेवक यहजहां आपको बोध न उपजन पावै॥ सम दम नेम यमादिक जितने भागे जहां तहांतैं। हेाइ हैं नहीं काममें स्वामी या सेवक की घातैं॥ ९२॥

मोहउवाच—सुनत भूप कलियुगको करनी उरमह अति सुख माना। कह्योकि है पुरुषारथ नीको कलिको यह मैं जाना॥ जोपै करी तीरथन माहीं कलियुग आन हमारी। जानि परततौ काज औरहू लैहै सहज सुधारी ९३॥

चा० दो० चारबाक बडरों कही महाराज कछु और।
सोमोसों कलियुग कही कहियो समै अगोर॥ ९४॥

मो० दो० भूप कही कहिमैं शुभ कलिकह कह्यो बहोरि।
चारबाक तब कहन लिय समाचार कछु और॥ ९५॥

चारबाकउवाच०भुजंगप्रयात छन्द—महाराज कलियुग कह्यो फेरि ऐसे। भये काज सबजे कहे आप तैसे॥ अबै जासदनमैंबिशुनभक्तिराजै। बरणचारिहूमैं नहींजोरछाजै॥

रहैं वै सदा मित्त सों चित्त जोरैं। लिये प्रेमको संग दृढ़ता बटोरैं॥ परब्रह्म जो है जगत आदि कारन। धरे रूप जैसे मही भार टारन॥ श्री राम राजा हन्यो लंकरावन। बहुरि कृष्ण होइ कंसको शिर नसावन॥ किये और हू जे चरित भाव जैसे। भयो पाइ कारण तहां नाम तैसे॥ दयासिंधु गोविंद गिरिधर मुरारी। यशोदासुअननन्दआंगन बिहारी॥ महाराज दसरथ सुवन चाप खंडन। शिला शाप मोचन निगम नीति मंडन॥ रचै तासु प्रतिमा धरै भाव सेती। करै अर्चनाबंदना भांति केती॥ करै कीरतन नाम अंतर न राखै। दृगन मिचकी माधुरी रूपचाखै॥ करैचित्त की वृत्ति को लीन तामें। छुपैज्यौं चपल दामिनी श्याम घनमें॥ चरण बांधि नूपुरकरै निर्त्त आगे। विसारै दसादेहकी प्रेमधागे॥ अहर निशि सदा रीत ऐसी निबाहै। विषय भोग कबहूं न सपनेमें चाहै॥ यद्यपि करों मैं विघन्नहु घनेरे। तद्यपिबढ़े सूर फिरतेन फेरे॥ ९९॥

दो० सुनत बात यह भूपकी उरमह उपजी शंक।
यद्यपि धीरज धारिपुनि बोले वचन निसंक॥ ९७॥

मो दो० विष्णु भक्ति की रीत सुनि मति कोउ मानहु मीत।
मानत आई है सदा वह हम सों अरि रीत॥ ९८॥
कलिकी पाय सहाय को कछु इक जन मम ओर।
बांधि ले आवहु भक्ति को के मारौ तिहि ठौर॥ ९९॥

कलहंस छन्द—असतसंग नामा प्रतिहार। तासों भूपति कही हंकार॥ क्रोध लोभ को खबर जनाव। दोऊ विष्णु भक्ति पहं जाव॥ ताहि बांधि आनै मम पास। कितो तहां-हीं करै बिनास॥ १००॥

सोमराजी छन्द—ऐसो मंत्र कियो नर नायक। तबहि खांग आये इक पायक॥ करिकै प्रथमहिं भूप जुहारन। आगे पत्र दियो धरि चारन॥ पूछी भूप कहां ते आवत। पूरब दिशि सो भयो बतावत। उतकल देश महा अति पावन। बसत बारि निधि तीर सुहावन॥ जहं पूजत सब

श्री पुरुषोतम । जा प्रसाद ते होत नरोत्तम ॥ तहां आयके बीर महामद । तिन यह राजन पठयो कागद ॥ मैं अज्ञान नाम लघु पायक । हौं कदीम या घर को धायक ॥ १०१ ॥

दो० पची भूप उठाय तब अहंकार कर दीन ।
कहा लिख्यो यामें पढ़ऊ सो तिन प्रकटे लीन ॥ १०२ ॥

सुगीति ०—तामहं लिख्यो मद मान ऐसे मोह को बिरतान्त । सरधा इहां ते गई लैकै सुता अपनी सान्त ॥ पठई विवेक मनायबे कहं उपनिषद को ताहि । होबोधकी उत पत्ति जासों आपु जानत जाहि ॥ दिवस निशि तिहि पास बैठी करत अस्तुति तास । चाहती लैजाहि ताहि विवेक नृपके पास ॥ अरु सखा भूप विवेकको निष्काम धर्म सुजान । सोऊ जात सहाय तिनकी परत ऐसो जान ॥ १०३ ॥

चौ०—सुनत संदेस मान मद केरा । भयो भूप उर शोच घनेरा ॥ सभय सशोच देखि सब काहू । करि दृढ़ता बोला नर नाहू ॥ सुनऊ सकल सैनप बर बाहू । सरधा सन कछु भय जिन खाहू ॥ जहंलगि सृष्टि अहै जगमाहीं । मम बस बर्त्तक सभय भ्रमाहीं ॥ तहां कहां सरधा मग पावै । जो उपनिषद विवेक मिलावै ॥ १०४ ॥

दो० बऊरि कही नृप पायकहि ओं अजान सुनु बात ।
जाय बेग मद मान सन कहियो मम कुशलात ॥ १०५ ॥
बऊरि धर्म निष्काम जो जीत विवेक सहाय ।
छल बल करि ताकहं पकरि दीजो इहां पठाय ॥ १०६ ॥
अरु विवेक की उपनिषद ढिग सरधा कहं लैन ।
तिनहूं के पकरन लिये पाछे पऊंचत सैन ॥ १०७ ॥
गयो अजान जुहार करि असत संग पुनि आय ।
कह्यो कि आवत लोभऊ क्रोध समेत सहाय ॥ १०८ ॥

चौ०—तिहि छन पट मंदिर ते आये । लोभ क्रोध दोउ स्वांग बनाये ॥ आय तिन्हन भूपहि शिरनावा । प्रथम क्रोध बल बलकि सुनावा ॥ १०९ ॥

क्रो० दो० सुनियत महाराज कछु करत भक्तिते त्रास ॥
अरु सरधा अरु शान्ति को मानत उर उलसास ११०

रो० हमसे सेवक जुपै तुम्हारे अहैं बीरबर भारी ॥ कितक समर्थ सीव जो दाबैसरधा सान्ति बिचारी ॥ जाके हृदय जाय मैं बैठों सो कोऊ किन होई । करों तेहिछन माहिं आंधरो गूंगो बहिरो सोई ॥ जो कदापि पंडितहू होई जाने वेद पुराना । तौ वह बिद्याबुधिचतुराईजानो धुआंउड़ाना १११॥

लोभउवाच०कुसुम०—बहुरो आय लोभ यों कहा । मेरे बस सब जग ह्वै रहा ॥ मेरे पीछे सदा फिरै। नेक मरनहूं ते नहिं डरै॥ निशिदिनयही बिचारतरहैं। बहुधनकौन भांतितें लहैं ॥कहैंकिऐसीमिहनतकरों। जातेधाम द्रव्यसोभरों॥११२॥

रो०—अबकी इतनो जमा किया है आगेइतोकरोंगो । सोधन लैके जाऊंदूर दिशि ह्वांते माल भरोंगो ॥ सो लै जैहों दिशा दूसरी तहां करोंगो दूना । निशि दिन रहै बिचारत यह चित सरधासान्ति बिहीना ॥ कोऊ कहै बांधि परकर को सेवा नृपकी कीजै । रहै सदा हाजिर हजूरहित आज्ञा टार न दीजै ॥ जो वह कहै गऊ को बिहनो लूटि बिप्र घर लीजै । तो हू शिर पर धरि कै आयसु ताको बिलम न कीजै ॥ जो कदापि कोऊ करि जोरै तौ सनमुख ह्वै लरिये। कैतो मारिचलावों ताको कै आपुन तहं मरिये ॥ ऐसी भांति रिझावै नृप को तौ जागीरै पावै । ऐसेहीं शोचत बीतेहिय सरधा सान्ति न आवै ॥ कोऊ कहै चोरि धनलीजै सेंध बड़े घर दीजै । कोऊ कहैं बटोही पैते लूटि मारि धन लीजै ॥ औरो यतनबिचारत जेतेसासब मोकों लीन्हे । नाचत गावत पढ़त पढ़ावत चौदह बिद्या कीन्हे ॥ हैं जेते शरीर धारीजगमैंअपने बस कीन्हें । रहतअधीन सदामेरे सब मोही मैंचितदीन्हे ॥ ऐसेही धनसंचयकारन शोचत आयु गवांवैं। सरधा नहिं सपने हूं भेटैं सान्ति कौन बिधि पावैं ॥ ११३ ॥

क्रोध०—कही क्रोध पुनि आगे ह्वैकैं मैं नहिं बहुत बखानत । मेरो बल पुरषारथ राजन तुम नीके कै जानत ॥ विश्वामित्र यदपि क्षत्री कुल अरु पुनीत अति भारे ।

ऋषि वशिष्ठ के पुत्र एक शत तजि विचार तिन मारे ॥ बड़ो दोषविप्रनके बधको ताको भयनहिं मानो। सोयहसब पुरुषारथ मेरो यहकछु नाहिं छपानो ॥ बहुरि इन्द्र सुरपति कहवावत तजि मर्यादा सोऊ। विश्वरूप त्वाष्टुर मारे अपने कर द्विज दोऊ॥ लैत्रिशूल शंकर शिर विधि को धड़ते कीन्हो न्यारो। यद्यपि पिता पूज्य सबही को सो नहिं नेक विचारो ॥ यह महिमा सब मम भुज बलकी कहं लगि भाषि सुनाऊं। ब्रह्मा आदि देव बस मोरे कहा मनुष्य गनाऊं ॥ यद्यपि होय विवेकी पण्डित अति गुणवंत कहावैं। ते मेरे बसि ह्वै अधरम रत सुधि बुधि सकल गवावैं ॥ ११४ ॥

लोभ० दो० तबहिं लोभ निज नारि जो तृष्णालई हंकारि।
पट गहि तेसो स्वांग रचि बनि आई हंसि नारि ॥ ११५ ॥

चौ०—प्रथम आइ सोन्हत्यन लागी। बहुरि लोभ बातन अनुरागी ॥ लोभ कही ऐ प्राण पियारी। तुम मतिमोते रहु जुनियारी ॥ सुनियत कछु विवेक को जोरा। भयो मोह उरशोच घनेरा ॥ सो मैं कहों आपनी तोसों। सुनि तैं सुमुखि कान दै मोसों ॥ जो यह सम्पति जगत लखाई। औरो लोक लोक प्रतिगाई ॥ बरन चौदहौ भुवन समेता। होहि न पूर उदर मम एता ११६ ॥

दो० मम प्रताप बारिद निबिड़ रह्यो सबै जग छाय।
नखत समादिक बोध विधु नेक न सकहि लखाय ॥ ११७ ॥

तृष्णोबाच०पंकजबाटिकाछन्द—तब तृष्णा कहि सत्य नाथ। तुमजु कही सब अपनि गाथ ॥ तुम प्रताप जिमि जाल मीन। बाझि रहीं जग जेहैं मीन ॥ तदपि मह्यं तुव दासि कन्त। कोऊ न पावै मेरो अन्त ॥ जो कदापि कोउ कोटि कोर। ब्रह्माण्ड करैजू एक ठौर ॥ डारि देइ मम उदर माह। तऊन पावै तनक थाह ॥ जारै कोटिक अग्नि माह। तदपि ताहि सन्तुष्ट नाह ॥ अधिक अधिक अधिकात जाय। तहं सरधा सांन्ति न सकहिं आय ॥ ११८ ॥

क्रो० दो० ताही अन्तर क्रोधने हिंसा लई बुलाय।
अति विकराल भयावनी तास स्वांग बनि आय ॥ ११९

शोभनकुन्द—हिंसा सभा मैं आइ प्रथमहिं कियौ अद्भुत नृत्य। अतिही भयानक स्वांग मानो देह धारे सत्य ॥ बहुरि तासों करन लाग्यो क्रोध वार्त्तावर्त। ऐ प्रिया जानति भले तैं जगत मोतैं डर्त ॥ कछु काज लगि हमको बुलायो मोह राजा आज। जो करहु तुमहु सहायता तो बने सब नृपकाज॥ करहु तुरतहि बद्ध कोऊ होय छांड़ि बिचार। शोच संसैसकुच अपयश लोक बेद बिसार ॥ १२० ॥

हिंसा०चौ०—हिंसा कही सुनिय मम स्वामी। मोहिं जानि आपन अनुगामी ॥ माता पिता बिप्र किन होऊ। हतों तुरित तुव आयसु सोऊ ॥ खग मृग जलचर कीट पतंगा। सहज करों तिनके तन भंगा ॥ बसहु ज्ञान जाके उर माहीं। तिहि मुहि तजि हित दूसर नाहीं ॥ १२१ ॥

दो० यहि बिधि चारो स्वांग जब किये आपने ख्याल।
तब तिनको आज्ञा दई महा मोह महिपाल ॥ १२२ ॥

मोह०हाकलिकाछन्द—जाहु बेग तुम चारिहु जने। बनै सान्ति अरु सरधा हने ॥ जिहि तिहि भांतिन बल छले। अपनो कारज करियो भले ॥ ऐसे तिनको बीरा दियो। महा मोह पुनि बिदा कियो ॥ ते पुनि नृपहि जुहारत भये। निकसि सभा ते बाहर गये ॥ १२३ ॥

चौ०—बहुरि भूप उर चिन्ता बाढ़ी। है सरधा बुधि बल अति गाढ़ी ॥ मिथ्या दुष्ट नाम मम नारी। है सोऊ छल बल अधिकारी ॥ पठओं ताहि तहां सो जाही। गहे उपनिषद ढिग ते ताही ॥ सरधा बांधेमें जो आवै। शान्ति सहजही तौ दुख पावै ॥ अहहि शान्ति अतिही सुकुमारी। सरधा बिरह मरहि बिन मारी ॥ यहि बिधि करि बिचार नृपराई। भरमावति सहचरी बुलाई ॥ तबहीं भेष बिचित्र बनाई। भरमावती नाम तह आई ॥ निकट बुलाय कही नृपतासें। बेगि जाहि मिथ्या चियपासें ॥ तासों मम अभिलाष जनाई। आनिय सादर ताहि बुलाई ॥ १२४ ॥

दो० नृप आयसु सहचरि चली मिथ्या त्रियके पास।
बनि बैठी पट ओट में स्वांग सुन्दरी तास ॥ १२५ ॥
तासु निकट भरमावती सहचरि बैठी जाय।
नृप निदेश लागी कहन करिकै बंदन पाय ॥ १२६ ॥

भरमावती० चौ०——तुमको प्रिय नृपति बुलाई। करि अति अभिलाष पठाई ॥ कछु आय बन्योहै कामा। चलिये उठि वेगहि बामा १२७ ॥

मिथ्या०——मिथ्या तब उत्तर दयऊ। सखि बहुत काल चलि गयऊ ॥ मैं रही नृपति तें न्यारी। अब लाज होत मुहिं भारी ॥ किहि भांति भूप ढिग जैये। पूछे कह ब्याज बतैये ॥ ऐसे कहिकै अंग रानी। कछु अङ्ग मोरि जमुहानी ॥ कछु नैन नींद रसभीने। आलस युत अङ्ग न कीने ॥ १२८ ॥

भरमावती० दो० अहो प्रिया सहचरि कही यहमुहि भेद बताव।
अंगशिथिल आलस दृगन कहिये कौन प्रभाव ॥ १२९ ॥

मिथ्या० चौ०——मिथ्या दुष्टा कहि हंसि तासों। होय एक पतिसों रति जासों ॥ आलस नींद न आवत ताही। मुहि बहु पति रति रहत सदाही ॥ इकछिन सावकाश नहिं लहिये। तातें सदा उनींदी रहिये १३० ॥

खी० दो० बहुरि कही भरमावती कहु प्रिय तिनके नाम।
कौन कौन तोसों सदा मानत हैं बिश्राम ॥ १३१ ॥

मिथ्या० रोला छन्द——मिथ्या दृष्टि कही तब हंसि के सुनु सहचरी सयानी। प्रथमहि राजा महा मोह पुनि काम क्रोध मदमानी ॥ दम्भ लोभ मत्सरहि आदि दै जे प्रवर्त्त कुलमाही। ते सब मोसों प्रीत करतहैं मेरोही मुख चाही ॥ १३२ ॥

सखी० तोमर छन्द——हे प्रिया सुनि तुव बैन। मुहि होत अचरज ऐन ॥ है मोह नृपके धाम। सुन्दरी ईर्षा नाम ॥ अरु काम के रति बाम। विख्यात अतिहि ललाम ॥ है लोभ के घर तीय। तृष्णा पियारी पीय ॥ पुनि क्रोध

के आगार। हिंसा रहति बर नार ॥ पुनि त्रिया कलि-युग धाम। जिहि कहत दुरगति नाम ॥ १३३ ॥

दो० अपनी अपनी नारि संग ये सब मानत प्रीत।
कौन भांति तजिकै तिन्हैं तोसों राखत रीत ॥ १३४ ॥

मिथ्या० दो० हे आली यद्यपि अहैं भामिन सबके धाम।
तद्यपि मुहि देखे बिना नहिं मानत बिश्राम ॥ १३५ ॥
मेरी छवि की मोहनी मोहि रह्यो संसार।
बिनुविचार मोसों रमत सुधि बुधि सबै बिसार ॥ १३६ ॥

सखी० दो० सहचरि तव आशिष दई दई करै प्रिय तोहि।
बढ़ै प्रीति सब पतिन सों दिन दिन दूनी होहि ॥ १३७ ॥
अब चल बिलम न कीजिये मग जोवत इमि कन्त।
चन्द्र उदै की लालसा जिमि चकोर दिन अन्त ॥ १३८ ॥
यहि बिधि दोनों स्वांग ये पट अंतर बतराय।
बज़रि सभामधि आइके कीन्हो नृत्य सुहाय ॥ १३९ ॥

चौ०—सुभग स्वांगलै नृप ढिग आई। निरखि मोह हरषे अधिकाई॥ कहेकि हे प्रिय प्रानपियारी। तुम बिनु मैं अति रहों दुखारी ॥ अब तुव आगम भा सुख कारी। सादर बज़रि गोद बैठारी ॥ १४० ॥

दो० लाज सहित अति मान सों बैठी मिथ्या गोद ॥
बदन चूमि आलिङ्ग दृढ़ रह्यो मोह भरि मोद ॥ १४१ ॥

शिष्य० चौ०—मिथ्या दृष्ट कह्यो मुसकाई। राज मोहिं किहि काज बुलाई ॥ १४२ ॥

मोह०—हे भामिनि तुम जानत नीके। सकल काज मम तुम बिनु फीके ॥ सदा बसत तुम उर मम माहीं। बिसर न यक छिन बिसरत नाहीं ॥ आज काज मम सब बनि-आयो ॥ तो कह प्रिय तिहि हेतु बुलायो॥ १४३ ॥

दो० शान्ति सहित सरधा सुनित गई उपनिषद पास।
ताहि मिलाय विवेक कह चाहति बोध प्रकाश ॥ १४४ ॥

चौ०—ताके उदय नाश कुल होई। है सुनि मुहिं चिन्ता अति सोई ॥ ताते प्रिया तहां तैं जाही। छल बल

साधि गहसि हठि ताही ॥ आनिय ताहि इहां गहि केशा । रहै वंदि गृह मिटै कलेशा ॥ १४५ ॥

मिथ्योवाच—मिथ्या दृष्ट कही सुनि राजा । तुव प्रताप यह केतिक काजा ॥ मिथ्या शास्त्र उपाय विशाला । आनऊं बांधि ताहि ततकाला ॥ राखऊं तिहि पाखंड मझारा । बऊरि न लहै विवेक संभारा ॥ १४६ ॥

दो० शशि सम उदित जु उपनिषद करऊं तासु कहं अस्त ।
जो पिय आयसु होय तब सरधा केतिक वस्त ॥ १४७ ॥

चौ०—सुनि प्रिय बचन भूप हरषाई । मिथ्या दृष्टि लई उर लाई ॥ तू बुध बल साहसी सयानी । है मो कहं प्रतीत दृढ़ रानी ॥ जोकारज मोते नहिं होई । राखत हौं तो पहं मैं सोई ॥ १४८ ॥

दो० ऐसे कहि अति हर्ष लहि महा मोह महिपाल ।
चुम्बन करि मुख कुच परसि कहि शिर रम्भा बाल ॥ १४९ ॥

मि०चौ—मिथ्या दृष्ट कही हो राजा । उपजत सभा मध्य यों लाजा ॥ जोपै तुम्हरे हिय यह आई । चलिये शैन सदन सुखदाई ॥ १५० ॥

दो० सुनि कै मिथ्या के बचन त्यांग मोह महिपाल ।
चल्यौ सैन को ब्याज लै करि पूरण यह ख्याल ॥ १५१ ॥

इति श्री प्रबोधचन्द्रोदय नाटके मोह स्वरूप वर्णनो नाम द्वितीयोऽङ्क : २ ॥

कृष्णदासभट्ट ऊचु: दो० महा मोह की प्रबलता ऐसे प्रकटि दिखाय ।
भूपति कीरत ब्रह्म सों बऊरि कही नटआय १ ॥

नटउवाच० कुण्डलिया—राजन भूपति मोह कोपठई मिथ्यादृष्ट । गई उपनिषद निकट सो लैपाखण्डी सृष्ट ॥ लैपाखण्डी दृष्ट घेर सरधा को लीन्हों । सरधा अति भय भीत भागि कऊं अंतर कीन्हों ॥ शान्ति भई अति दुखित बिकट लखि मिथ्या काजना सो अब ढूढ़त फिरत बिकल सरधाकह राजन २ ॥

कृष्णदास० सो० ऐसे दईजनाय नटवर कीरति ब्रह्म सों।
तबहीं प्रकट्यो आयस्वांगशान्ति पटधामत ॥ ३ ॥

चौ०—अतिहिसु सुन्दर बैस कुमारी। सरधा सुता शान्ति सुकुमारी॥ सहचरि करुणा नाम सुहाई। लीन्हे संग सभा महं आई॥ अतिही व्याकुल बिकल शरीरा। मात मात कहि रुदत अधीरा॥ ४॥

शान्तिरु बाच। चौ०—अहह मात मम कृपा निधाना। मोकह तजि कित कीन्ह पयाना॥ ऐ दुख हर निस जन सुखदाई। अहह जननि मुहिकत बिसराई॥ रहिन सकति छिन मोहि बिहीना। अबकत मातु कठिन चित कीना॥ मिथ्या दृष्टकष्ट बड़ दीन्हा। अहह मातुधौं तुहिका कीन्हा॥ शुभ अस्थान वेद जो गाये। पुन्य तीर्थ रमनीक सुहाये॥ जहंहरि कथा कीरतन होई। प्रेम मगन गावैं जनकोई॥ करति सदा तुम तहां निवासा। सो अब जननी कहं तुव बासा॥ जौहरि भक्त संत सुखदाई। राम कृष्ण पर प्रीत सदाई॥ रहत हृदै प्रफुलित बन जाता। बसत अलिन इव तहं तुम माता॥ ५॥

दो० सो अब पाखण्डीन मधि छैहे सरधा मात।
तहं जीवन किहि भांति तुव मम जीवन किहि भांत॥ ६॥

बरवै छन्द—कहि सनेह सखि करुणा वेग उपाय। मात बिरह दुख मुहि सन सहि नहिं जाय॥ सखि सरधा बिनु जीवन धृग धृग सोय। बिना मूलकर बिरवा सफलन होय। सरधा रहित जु चाहसि सखि हितमोर। तौ अब यह तन जारिय काठ बटोर॥ ७॥

दो० देखि बिरह बारिद बिकल बूड़त शान्ति अधीर।
तब बोली करुना बचन मानेऊ प्रीत गंभीर॥ ८॥

करुणा०हरिगीतिकाछन्द—ऐशान्ति सरधा कुवरि परम सुजान भय मति मानिये। ये बचन अतिहिअधीरतव कत धीरछांड़ि बखानिये॥ जग बिदित सरधा मातु तुवशुभतियन महं शिर मणि गनी। हित सेन वेस विवेक केवल जासु यश

सक को भनो॥ कबहूं कदापि न ताहि मिथ्या दृष्ट करिबल जीतिहै। कोसकै करि तिहि बंदि तूकत शोक सागर महबहै॥ इन दिनन कलियुग आदि सैना मोह की पर बल भई। तिहिहेत कलिहि निवारिनिरभै ठांव कछु सरधा लई॥ ९

दो० यतन करिय धीरज धरिय मिलहि कुंवरि तुव माय।
जहां तहां खोजिय चलिय जनिऊ धीर अकुलाय॥ १०॥

शान्ति०। पंकजबाटिका छन्द—हो करुना मैं ठांव ठांव। रुदत फिरत लैजननि नांव॥ नहिं पावत कछु सरधा लेस। खोजिपचीसब देशदेश॥ रहिन सकत अवसरधाहीन। किमि जीवहि बिनसलिल जुमीन॥ तासु बिमुख सुहिअतिसै पीर। हे सखि किहिबिधि धरिये धीर॥ चार बरण अरु आश्रमचार। तप अधार मखकरन जुहार॥ खोजि फिरी मैं सबके माहिं। देखिपरत कछुसरधा नाहिं॥ जोबिधि बस पाखण्डबीच। जियत होयपरि बिवसनीच॥ होत समय समरथहु दीन। जिमिसिय निझर बसोमलीन॥ ताते तिनमधि लीजै शोध। बिनु सरधा सुहिनाहि न बोध॥ ११॥

दो० ऐसे करुना सों कहे शान्ति बचन बिलखाय।
तबही जैन मती जती आयो स्वांग बनाय॥ १२॥
नख सिख नगन मलीन तन चहुदिशि बिगलित केश।
करमैं लोन्हे मोरछल प्रेत मनो नर भेष॥ १३॥

करुणा०। चौ—ताहिदेखि करुणा सकुचानी। कहीसभीत शांति सोंबानी॥ अहोकुंवरि यह को नर आही। अति निलज्ज लखियत है याही॥ मलिन कुभेष भयानक भारी। किधों पिशाच प्रकट तनधारी॥ याकी मति गति जातन जानी। अति बिपरीतन परत बखानी॥ १४॥

शान्ति० दो० शान्ति कह्यो तिहिदेखिकै मम बिचार यह कोय।
है नरकी यह नरकते छूटो आवत सोय॥ १५॥
छिन इक इहां बिलम्ब करि लीजै याको भेद।
कौन वस्तु को यह धनी गावत कौथो वेद॥ १६॥

कलहंस छन्द—तबलगिजतीसभामह आय। बैठो आसन

भार बिछाय ॥ कछु नट भये सरावक जाय। तिनन आय नायो शिरपाय ॥ तिनको जती आशिषा देइ। बैठारे सब सहित सनेह ॥ बोल्यो तिन प्रति बचन सदेश। लाग्योति न्है करन उपदेश ॥ प्रथम नाम लीन्हो अरहन्त। इष्टदेव तिन कोकहि अन्त ॥ बहुरो कही सुनौरे भाय। तुमको कहो ज्ञान समुझाय ॥ १७ ॥

जती० दो० यहजु जीवसो ब्रह्म है जाको रूप अलेख।
प्रकट होत है गुणन तें सुमन सुगंध विशेष ॥ १८ ॥

हरिगीतिका छं०—तहं जीव जाते सुख लहै सुद्रकी जियेहि तजानिकै। धन धाम तन मन बचन करियह लीजिये सिख मानिकै ॥ यह है अनित्य जु जगत तामैंहै कछू दीबोभलो। है यह समै करिसकहु तौ करि लेहु कर कछु दै चलो १९ ॥

कलहंस०छं०—औरो कहौं सुनो एक बात। यह जो न्हावन धोवन गात ॥ पोछि पुनोत करत नर देह। है यह अति अज्ञान जुगेह ॥ काहे तें सो कहौं बखान। सुनौ सबै तुम दैके कान ॥ पांच तत्व की है यह देह। भीतर भरी मलामत खेह ॥ नवो द्वार करि प्रगट होय। मलौ मुच कफ आदिक सोय ॥ २० ॥

दो० जो तिहि बाहर धोइये भीतर होय न शुद्ध।
ताते है यह वृथा सब जानि लेहु करि बुद्ध ॥ २१ ॥

चौ०—जो तुम चहौ कि प्रभुको जानौ। तौमैं कहौं करौ सो कानौ ॥ मोसम जती परै जो दृष्ट। ताकों मानो करिकै इष्ट ॥ अतिआदर करिकै आनिय धामा। भांति भांति दीजै विश्रामा ॥ षटरस बिंजन बिबिधि बनाओ। सादर ताको परसि जिवाओ ॥ अघरो वेा कछु करै जु अज्ञा। भाग्य मानि कीजै सुप्रतिज्ञा ॥ २२ ॥

दो० जो कदापि तुम त्यजन तें रमै करै कछु दोष।
तदपि न तबहूं मानिये कबहूं जती सेां रोष ॥ २३ ॥

मधुभार०छं० संसार सार। देखौ बिचार। परहितसमान। नहिं पुन्य आन ॥ परद्रोहकार। समनहिंनभार। निजहितपि

ज्ञान । परहितनजान ॥ तेजगपुमान । सबग्यानजान ॥ २४ ॥

सुगीतिका छं०—जती जिनके धाम ते विश्राम बिन जो जात । होत वे नर अधम जग सब पुन्य तुरत नसात ॥ ऐसे बचन सुनिकै सरावक सबन पकरे पाय । तब पीठि ठोंकि अशीष दैकै दये सब बैठाय ॥ २५ ॥

रोला छन्द—बहुरो जती आपनी सरधा हंसिकै टेर बुलाई । हती स्वांग पट ओट में ताको सो विहंसत तहं आई ॥ तासों कही जाहु इनके संग रहो सदा इन माहीं । याते चित इनके एकौ छिन कबहूं अनतन जाहीं ॥ २६ ॥

कुण्डलिया—ठाढ़ी देखतही तहां शान्ति जु करुना पास । सुनत नाम सरधा श्रवन अतिही भई उदास ॥ अतिही भई उदास हिये महं यह अनुमानी । यह को सरधा और किधों वह छल करि आनी ॥ करुना यहि बिधि लखी शान्ति चित चिन्ता बाढ़ी । कहत भई समुझाय ताहि कस शोचत ठाढ़ी ॥ २७ ॥

करुणोवाच० दो० यह नहिं सरधा मातु तुवकतहिय करति खभार ।
मोहिं अहिंसा ने कह्यो सरधा तीन प्रकार ॥ २८ ॥

सुगीतिका छन्द—एक सरधा सात्वकी जो कुवरि तेरी मात । जाको विवेक भुआल कैहै गरू पन बहु भांत ॥ दुतिय सरधा राजसी जिहि मोह के अधिकार । तृतिय कहिये तामसी जिहि काम क्रोध पियार ॥ २९ ॥

दो० कबहूं न सरधा सात्वकी आवै इनके हाथ ।
रहति राजसी तामसी पाखण्डिन के साथ ॥ ३० ॥
ऐसे करुना शान्ति को समुझाई गहि पान ।
स्वांग सेवराको तबहिं प्रकट भयो तहं आन ॥ ३१ ॥

सुप्रिया छन्द—कर एक में पोथी लिये । आयो सभा प्रफुलित हिये ॥ कछु निर्त्त करि ठाढ़ो भयो । पुनि सबन सों ऐसे कह्यो ॥ तुम सुनहु रे नर प्रानियो । मम सीख हित करि जानियो ॥ ३२ ॥

कलहंस छन्द—कहिये जोत आतमा नित्त । सो सब झूठ

आनिये चित्त ॥ नित्त यही तन भोग बिलास । और बात सब फूस फास ॥ यातें नाहिन उत्तम और । देखहु जहं तहं ठौर ठौर ॥ मन्दिर सुन्दर चित्राकार । बिछे बिछौना स्वच्छ सुचार ॥ भोजन षट रस कई प्रकार । चन्द बदनि बैठी आगार ॥ नाच कूद अरु राग रंग । अतर गुलाब शराब भंग ॥ सकल साज ये सुख को देत । है शरीरविश्राम हेत ॥ ३३ ॥

दो० कहा मुक्ति बैकुंठ कहपरलोकहु कह देख ।
जो कछुहै सो है यहै तन पालिबो विशेष ॥ ३४ ॥
अरु आतम यह देहमैं छिनक बिलासी आहि ।
प्रति छिन होत नयो नयो सदा एक सो नाहि ॥ ३५ ॥

कुसुमबिचित्रा छंद—जब सेवरा ऐसे कही । करुना सुनिके बिसमैं गही ॥ कही शान्ति सों कहत कहा । यह नर वेद विरुद्ध महा ॥ छिन इक ठाढ़ी और रहौ । याहू की अन्तर गति लहौ ॥ कहा वस्तु है याके हिये । पोथी कहा हाथ में लिये ॥ ऐसे दोऊ देखत रहीं । बैठ्यो खांग सेवरा तहीं ॥ ३६

रोलाछन्द—कछु यक लोग बौधमतवारे बनि बैठे तापासा लागो कहन सेवरा तिनसों कर पुस्तक परकासा ॥

सेवरो बाच—है यह जगत सदा को ऐसो जैसो सरिता पानी । आवत जात कहांते हैं धौं यह काहू नहिं जानी ॥ रह्यो काल्हि सो आज न लखियत आज सु काल्हिन लहिये । पलमें होत औरही औरै अस्थिर कोइ न कहिये ॥ ताते या शरीर को सबतें उत्तम जाम्यौ चहिये । खान पान उत्तिम बिधान करि याको पोषत रहिये ॥ गहनो राखि करज हू करिकै खैये दूध मलाई । जाते पुष्ट होय यह देहीं करिये वहै उपाई ॥ इस्त्री आदि भोग या नरको नाहिन देह बिहूने । ताते इनको त्याग न कीजै कीजै दूने दूने ॥ ३७ ॥

दो० भोग तजैं तप करि पचैं रचैं शरीरहि कष्ट ।
ते नर पशु बिन सींगके हे तिनकी गति नष्ट ॥ ३८ ॥

सुमन बाटिका जिमि जगत लीजे सुमन सुगन्ध।
दिना दोयते अधिक नहिं पुनि यह सुमन न गन्ध ॥ ३९ ॥

चौ०—कही सेवरा ऐसी बातैं। हर्षित बौध भये सब तातैं॥ धन्यधन्य कहिनायौ माथा॥ भये सनाथ नाथसुनि गाथा॥ तुम जो कही नाथ यह बानी। सत्य २ हम नीकै जानी॥ ऐसे करी प्रशंसा सबही। हरषित होत सेवरा तबही॥ सरधा अपनी टेर बुलाई। सो हरषित पट गृहते आई॥ ४० ॥

दो० छिनक निर्त्य कीन्हों बहुरि आय सेवरा पास।
कह्यो कि सुहि आयसु कहा कहिये नाथ प्रकाश ॥ ४१ ॥

सेवरा० चौ०—कही सेवरा हंसिकै ताही। ये जो नरहैं मम मत माही॥ इनको करो आप पर मायल। परे रहैं जैसे ये घायल॥ इक छिन इन को करौ न न्यारे। जाते सेवक रहैं हमारे॥ ४२ ॥

दो० सरधा सुनिकै सेवरा बचन भले कहि नाथ।
गई सभेता बाहरी बौधक जन लै साथ ॥ ४३ ॥

जती० दो० जती देखिकै सेवरहि लीन्हे निकट बुलाय।
कह्योकि रे भिक्षुक हमैं अपनो मत समुझाय ॥ ४४ ॥

कलहंस छन्द—कहासिद्ध तेरे मतमाहीं। मोको समुझि परत कछु नाहीं॥ तैंजो यह मतकहत बनाय। आतमछिनक बिलासी आय॥ अरुयातन को भोग बिलास। सोतैं मुक्ति कह्यो बिश्वास॥ जोपै निश्चय है यह बात। तौ तू कत गृह तजि भरमात॥ कत तपकरि दुख सहत शरीर। कत तजि भोग न भयो फकीर॥ ४५ ॥

सोमराजी छन्द—बड़े लोग ऐसे हैं गावत। जे नर तप करिकै तन तावत॥ तेतौ फल उत्तम हैं पावत। जन्म मरण को दुःख नसावत॥ ४६ ॥

दो० जोपै आतम तो मते जनम मरन छिन और।
तौ तप करता औरहे मरन समै को और ॥ ४७ ॥
तौ तपको फल कौन को समाधान करमोर।
ताते यह जानी परत है झूठो मत तोर ॥ ४८ ॥

सेवरा० दो० कही सेवरा मो मतो समुझै तून अजान।
अहै हमारे मतेमैं सबते बुद्धि प्रधान ॥ ४९ ॥
निकट बुद्धि के आतमा छिनक बिलासी मुक्त।
अन्त समै जो आतमा बुद्ध लहै सेा मुक्त ॥ ५० ॥

जती० कुसुम बिचित्रा छन्द—तासों बहुरि जतीयों कही। तेरो मत यह नाहिन सही ॥ कौने तोसों यह मत कह्यो। तैंयह मत मिथ्या कहलह्यो ॥ अब तू आव हमारे मतमैं। कहा परो है मूढ़ कुमति मैं ॥ ५१ ॥

दो० प्रथम हमारे पंथमें ज्योतिष बड़ो प्रधान।
जाते बैठो भूमि पर स्वर गति खोजै जान ॥ ५२ ॥
और आतमा मोमते देह देह पर मान।
ताते पोषन देहको मो पथभलो विधान ॥ ५३ ॥

सेवरा० कलहंसछन्द—कहीसेवरा सुनु अज्ञान। जोपै तेा मतयह परमान ॥ है आतम तनके समानातौ स्वरगति किमि परत जान ॥ जो आत मदेही परमान। तौ एक देह की भेद जान ॥ ऐसेा झूठ न भाषहु मूढ़। हैमम मत अति तोको गूढ़ ॥ ५४ ॥

दो० ऐसे अप अपनो मतेा दोऊ कहत बढ़ाय।
ताही अन्तर स्वांग इक कापालीको आय ॥ ५५ ॥

मधुभार छन्द—नर अस्थि माल। गलमैं बिशाल ॥ भस्म-सम सान। सब अंगवान ॥ दृग अति अरक्त। मानेाहु तप्त ॥ मदमास सद्य ॥ नर खुपरि मध्य ॥ ५६ ॥

दो० ऐसे भेष भयावनेा कापालीको आय।
अति प्रसन्न निर्तत भयेा सिंगी नाद बजाय ॥ ५७ ॥

सेवरा० कलहंस छन्द—कही सेवरा ताको देख। को है रे तू मूढ़ कुभेख ॥ कौन पंथ यह कहा है सिद्धि। तैंजुगही यहअति अबुद्धि ॥ उपजत नाहि घिना तुहि नीच। कहा फकीरी याके बीच ॥ कहितु मुक्ति को अर्थअज्ञ। जानि परै तू कस छतज्ञ ॥ ५८ ॥

कपाली० दो० कापाली हंसिके कही अरेसेवरा क्रूर।
क्याजाने मम पंथको स्वाद तोहि अति दूर ॥ ५९ ॥

दो० मेरो पंथ अनादि पंथरु याहि सिद्धात सब।
करत वृथा सठ वाद मुक्ति सिद्धि मम पथ प्रकट ॥ ६० ॥

कलहंस छन्द--तोसों कहों आपनी रीत। मोसों रहत सबै भै भीत ॥ होम अग्नि निशि दिवस धाम। पावत बुझन न आठौ याम ॥ तामह मृगखग मत्स्यमांस। मदिरा सहित होम है तास ॥ बज्रि विप्र की खुपरी खोज। भरि भरि मदिरा पीवत रोज ॥ होम शेष जो वचसमास। ताहि भूजि ता अग्नि पास ॥ ताके ऊपर भक्षनहोय। याको भेद न जानै कोय ॥ ६१ ॥

दो० अरु नित केतक जीवको बध करि अपने हाथ।
प्रजत आमिष मद्यसों भैरों सुरको माथ ॥ ६२ ॥

चतुःपदीछं०-ऐसेमस्तरहत निसवासरसोचपोच सोंजुदा सदा। करत भोग औरोजो नीके दरस परस आनन्द सुदा ॥ देखि विचार हिये में अपने को याकी सम है सुखदा। मत मेरे की करै बराबर ऐसो और न होय कदा ॥ ६३ ॥

सेवराउ बाच। चौ०--कही सेवरा तब यों बानी। सुनु रे कापाली अज्ञानी ॥ यदपि देह सुखतो कहंनीको। तदपि न्याय करि समझत फीको ॥ कहा रीत यह कह करतूत। कह बिचार यह कहा विभूत ॥ तैं जो मत की करत बड़ाई। सोवों मत्सर अरु मै दाई ॥ ६४ ॥

दो० स्वान स्यार वक गिद्ध गन तैसे भक्षत मांस।
मलिन भयानक भेष तुव मनज पिचास बिलास ॥ ६५ ॥

कपालीउबाच। सु० छन्द-सेवरा ऐसे कही घट बाटिकै जब। डाटिकै बोल्यो कपाली छूं कछू तब ॥ रे नहिं तोहिं प्रतीत सुने जड़। है मम पन्थ बली सबते बड़ ॥ ईश जु है जिहि तें जु भयोजग। होत प्रसन्न सराहि यही मग ॥ तेरि विसात कहा तुहिका गम। मोदिशिकै जु सकै अंगुरी सम ॥ कामना सिद्धि को सिद्ध यही पथ। दूसरो और न जानि यथारथ ॥ नीकैन तोहिं प्रभाव प्रकाशित। बैठ छिनेकको हों मत कीमित ॥ ६६ ॥

दो० कहतो ब्रह्मा बिष्णु शिव सूर चन्द्र उड़ सर्व।
भूमि मगाऊं स्वर्गतें ग्रहन होय बिन पर्व ॥ ६७ ॥

सेवरा०अनकूलछन्द—रेखल भोगी सब हम जानी। भूत मिठाई जिमि तुव बानो ॥ करि करि धोषा जगमति फेरी। प्रेतन कीसी पर मति तेरी ॥ इन्द्र जाल जो छल जगमाहीं। ता विन तामें अरु कछु नाहीं ॥ भानमती ज्यौं सब जग मोहै। तैसो तेरो करतव ओहै ॥ आपनपौ को जब सुधि जानै। राह मुक्ति को तब पहिचानै ॥ ६८ ॥

दो० जानि परत को उ प्रेत ने तोहि दियो उपदेश।
यामें दोष खुदी बिना नहीं मुक्तिको लेश ॥ ६९ ॥
यों कापाली के पथहि कह्यो सेवरा दोष।
तब रुतिराते नैन करि कियो कपाली रोष ॥ ७० ॥

कपाली०अमानीछन्द—खड्ग को काढ़ि कै दौरि पाछे परयो। कह्यो सठ प्रेत सम गुरू तैंने करयो ॥ काटि कै शीस तुव देउं बलदेव को। निंदतू करै सठ लहै नहिं भेव को ॥ सेवरा भाजि के जती पाछो लियो। जायके गोद में शीस ताको दियो ॥ खांग जो प्रथम ही आय बैठे तहां। करत उपदेश हो जैन मतको जहां ॥ ७१ ॥

कलहंस—तापै छिप्यो सेवरा भीत। दरयो कापाली बिपरीत ॥ जतीउबाच। जती कपाली सों तब कही। तुमतौ महा पुरुष हौ सही ॥ याको अबअपराध निवार। याभिक्षुक को जिय जनि मार ॥ ७२ ॥

कपाली० सुगीतिका—रेमूढ़ है यापंथ में यह मुक्ति समुझतनाहिं। जीजियेजबलों जगतमें सुखहिसोदिन जाहिं ॥ चंद बदनिसरोज लोचनि बाल सहित सनेह। चारुखप्पर पानि लय निजकान्त भरि भरिदेह ॥ जिहि भांति ईशगिरीश कन्या राखिकै अरधंग। रहत न्यारो सबहि ते अरु खात

बिष अरु भंग ॥ तिहि भांति करि मदपान अरुबर सुन्दरिन केसंग। रस रंग में निशि द्योस बीतैं मुक्ति यह सरवंग ॥ ७३ ॥

जती० दो० मैं जुकह्यो ये भ्रात सुनि बिना जगत रस त्याग।
अरु बिन साधे तपत नहिं नाहिं न मुक्ति बिभाग ॥ ७४ ॥
सुनत कपाली जती के बचन कह्यो मन माहिं।
इनके हियमें पंथ पै निश्चै उपजति नाहिं ॥ ७५ ॥

कुसुमबिचित्रा—तबनिज सरधा टेरत भयो। तासु स्वांग पट ओटहि रह्यो ॥ सुनत बचन सो आई सभा। मानो बदन चंद को प्रभा ॥ छूटे चिकुर चरण लौं लसैं। हाड़नके आभूषन कैसे ॥ नैनरंगीले मनुमद पिये। ऐसी भेष कपालिनि किये ७६ ॥

जती० दो० प्रथम नृत्य करि मोदभरि बज्रविधि रसहि बढ़ाय।
हंसि कापाली सोंबज्जरि बोली शीस नवाय ॥ ७७ ॥
कहिय नाथ आयसु कहा दीजै मोहिं बताय।
करों काज सोई तुरत जो कछु तुम्हैं सुहाय ॥ ७८ ॥

कपाली० कलहंस छन्द—कही कपाली ये मम प्रान। एजुसेवराजती अयान ॥ मेरो मत ये मानत नाहि। तातें तू इनके ढिग जाहि ॥ इनसों तू ऐसी मिलिजाय। जैसे पानी दूध समाय ॥ ७९ ॥

दो० प्रथमेाधाय कपालिनी गई सेवरा पास।
ताके एक गुलिचा दई सहित बिलास सहास ॥ ८० ॥
छुवतहि ताके सेवरा कूदि उठ्यो हरषाय।
लई कपालिन भुजन भरि उरसों रह्यो लगाय ॥ ८१ ॥

सेवरा० चौ०—अति ही मगन कहन पुनि लागा। ऐ कापाली तू बड़भागा ॥ सुन्दर सरस सुहावन प्यारी। हिय हुलास हुलसावन हारी ॥ सोहै सहस गुनन को मोहीं। मैं अति सुखद सुनी नहिं जोहीं ॥ अतिहि रंगीलो यह मत तेरो। रीझो बज्जत देखि मन मेरो ॥ कोटि कोटि धृग मो

मतमाहीं। जामह यह सुख सपने नाहीं॥ वादिहि यामह जन्म गवायो। यह सुख स्वाद कबहुं नहिं पायो॥ ८२॥

दो० अबमोहिं अपनो दासकरि करिये कृपा कृपाल।
सिखवहु अपने पंथकी निपट रंगीलो चाल॥ ८३॥

ज० दो० एकश्वामत सेवरा रंचक तत्य के स्वाद।
चितलायेा मत भ्रष्टसेां करि अपनी मत बाद॥ ८४॥

सेवराउवाच०कलहंसछंद—दियेा सेवरा उत्तर ताहि। रेएजती कहा बरराहि॥ तू यामत की गति रंगीन। जानै कहा करम को हीन॥ जीवन मुक्ति कहत हैं जाहि। सेा यह कापालिन के मांहि॥ मोहिं पूछिया मतकी रीत। लह्यो जन्म फल छिन की प्रीत॥ ८५॥

चौ०—तबहिं कपाली सैन बताई। सरधा तुरित जती पहं धाई॥ ताके कंठ जाय लपटाई। आतुर जती हरषि उरलाई॥ बहुरि पुकारि कहन अस लागा। अतिहीं मुदित सहित अनुरागा॥ ऐसुख दानि छिनक ढिग मोरे। बैठ आपने धरम निहोरे॥ विवसन अंगलखि लगा लजाई। लैकै सुरछल देह छपाई॥ लग्यो कहन पुनि शब्द बिशाला। लाग्यो प्रेम मनेा ततकाला॥ खोयेा मैं सब जन्म वृथाहीं। नहस सरावक मत के माहीं॥ यहि विधि कबहु अराम न पायो। जो कापालिन छिनक जनायेा॥ ८६॥

दो० अब एस्वामी सद्गुरु कापाली तजि कोह।
शिष्य कीजिये आपनो मोहं करिकै छोह॥ ८७॥

सेामराजीछन्द—हरषित कापाली ततकालहि। लैकरि मद खुपरी भरि हालहि॥ प्रथमहि आपु अचै कछु तामहु। कह्यो दुहुन कहं आवहु पीयहु॥ तब यहि नगत फांस ते छूटहु। मानुष तन को लाहा लूटहु॥ कहो सेवरा येां नहिं पीवत। हमतेा हाड़ हाथ नहिं छूवत॥ ८८॥

दो० तबही सरधा सों कही कापाली मुसुकात।
मग़हूरी अबलों नहीं इनके उरते जात ॥ ८६ ॥

चौ०—तू उठि खप्पर इन कहं दीजै। लै अपने करनिज बसि कीजै ॥ ९० ॥

तोमरछन्द—सरधा उठी हरषाय। कर लियो खप्पर धाय ॥ भरि लीन मद सों ताहि। ढिग सेवरा के जाहि ॥ आपुन प्रथम पी लीन। पुनि सेवरा कर दीन ॥ ताकह प्रसाद जुजान। सादर कियो तिन पान ॥ ९१ ॥

दो० जती कही ऐसे वरा यह नहिं नीत बखान।
ऐसे महा प्रसादको करत अकेलो पान ॥ ९२ ॥
तबहि सेवरा जतीको लीन्हो निकट बुलाय।
लै मद अपनें हाथ तें दिन्हो ताहि पियाय ॥ ९३ ॥

सो० ऐसे करि मदपान दुओ परस्पर हरष युत।
लागे करन बखान कापालिन के मिलन को ॥ ९४ ॥

अनुकूल छन्द—पीवत पीवत मद बहु माते। सिथल अंग भे दृग अलसाते ॥ गिरे भूमि तल तन सुधि नाहीं। परे सरक मदिरा के माहीं ॥ देखि कपाली हर्षित भयो। दोउ-नको सो सम लखि लयो ॥ तब सहित नारि उठि नांचो। करिकै अपनो मत सांचो ॥ हंसि कही आज बिन दामा। लीन्हों मैं दोय गुलामा ॥ ऐसे कहि नाचन लागे। अति हर्ष सहित अनुरागे ॥ सुनि निर्त्त शब्द दोउ जागे। वाहू उठि निर्त्तन लागे ॥ ऐसे चारो निर्त्तत भये। टूटो तान बैठि पुनि गये ॥ ९५ ॥

चौ०—जती सेवरा मदसों पागे। कापाली के चरनन लागे ॥ कह्यो नाथ यह तुव मत नीको। है यह सबके मत को टीको ॥ अरु यह सरधा सुखद तिहारी। सबके मतते सरस पियारी ॥ ९६ ॥

कापाली० दो० कापाली तिनसों कहो कहा सराहत याहि।
औरा गुन सोमें अधिक सो तुम जानत नाहि ॥ ९७ ॥

कुण्डलिया छन्द—मारन मोहन बसिकरन उच्चाटन करि देन। दूरि देशहू तै तुरत आकर्षन करिलेन॥ आकर्षन करि लेन कौन क्रम जो कछु चहिये। इन्द्रजाल को ख्याल अपर जो कौनहिं लहिये॥ अष्ट सिद्धि नव निद्धि रहति ठाढ़ी मम द्वारन। होत रसायन सिद्ध सकल सोपारो मारन॥ ९८॥

जती सेवरा उवाच०त्रिभंगी छन्द—दोऊ कर जोरे करत निहोरे हम जनतेरे गुरु पूरे। भागनतें पायो दरस सुहायो सुख सरसायो दुख चूरे। अब है मतवारो हम शिर भारो बात तुम्हारी सुधिन लहैं। मंचन निज करिकै लीजै हरिकै तब हम तुमसो बिषै कहैं॥ ९९॥

कलहंस छन्द—कापाली हरषाय। तुरतहि बीराखाय॥ लीन्हो हाथ उघार। दियो दुहुन मुख डार॥ छिप्रहि ताके खात। उतर गई मदमात॥ बहुरि दुवो कर जोर। लागे कहन निहोर॥ भयो हमैं बिश्वास। है तुव मत सुखरास। अब अपनो करि जान। बिनय कीजिये कान॥ १००॥

सो० दीजै हमैं बताय आकर्षण अरु बसिकरण।
जाते लेहि बुलाय तिय कमनिय जाकीचहैं॥ १०१॥

दो० करिकै कृपा बताइये ऐसी बिधिते नाथ।
जो हम चाहैं उरबसी छिनमें आवै हाथ॥ १०२॥

सुंदरी छन्द—जती सेवरा कहियों बातन। बहुरो कहत भयो उठि तातन॥ ऐ गुरु देव एकहो बातन। बहुरि कहो गुनके गन गातन॥ औ यहि बीच विवेकरु मोहहि। बैर बढ़ो कहि जातन सोहहि॥ चहै विवेक कियो निज काजन। सिद्धिभये पुनि मोहको राजन॥ हैं हम औ तुमसों जन जो अब। मोहके दास कहावत हैं सब॥ १०३॥

दो० यह गुण औ हम तुम सबै काजन आवत आज।
ऐ हैं कोने काज पुनि मिटे मोह को राज॥ १०४॥
सुनियत तनया धरम की सरधा जाको नाम।

पठई नृपति विवेकने लेन उपनिषद बाम ॥ १०५ ॥
चाहत ताहि बुलायकै उपजायो परबोध ।
मोह नृपतिके नाम को यह मत कीन्हो सोध ॥ १०६ ॥

चौ०—जो उपनिषद् विवेकहि मिलई । तौ पुनि मोह कुशल नहिं लहई ॥ है सरधा कारण यहि माहीं । उनको और जतन कछु नाहीं ॥ तातें कीजै जतन विचारी । सरधा जाय भांति जिहि मारी ॥ कैवहि बंदि आपनी दीजै । दूरि उपनिषद् दृगतें कीजै ॥ कापाली बोल्यो हरषाता । मेरे ढिग यह केतिक बाता ॥ जोपै सोधि जानि हौं पाऊं । सरधा बैठीहै किहि ठाऊं ॥ जती कही यहतो मैं जानेा । ज्योतिषमें मैं बहुत सयानेा ॥ ताके मते जानि सुहिपरई । औ पैमेरो पांवन परई ॥ सरधा बिष्णु भक्ति के पासै । भाजिगई मिथ्याके त्रासै ॥ जे हरि चरण रहत चित लाये । रहति हिये तिनके सुख पाये ॥ सुनि यह खबर शान्ति हरषानो । मनहु सिखिनि सुनि बारिद बानी ॥ भली भई ललनी सुधि पाई । करुना हरषित दई बधाई ॥ १०७ ॥

दो० कापाली० बहुरो कापाली कही यह तौ मे हिं बताय ।
धरम काम भय भाजिकै रह्यो कहां है जाय ॥ १०८ ॥
सो० छिन एक यती विचार अंगुरिनसों गनिके कह्यो ।
विष्णु भक्ति आगार जाय सरन वाहु गही ॥ १०९ ॥

चौ०—बोल्यो कापाली सकुचाता । जो पै तात सांच तुव बाता ॥ सरधा गई भक्ति सरनाई । विष्णु भक्ति जो भई सहाई ॥ तौ विबेक जो मतो बतायो । सहजहि तासु सकल बनि आयो ॥ तिनपर जोर हमारो नाहीं । कामादिकहुं तहां भय खाहीं ॥ कलियुगहू को कछु न बसाई । यद्यपि अहै बड़ी ठकुराई ॥ विष्णु भक्ति की बड़ी बड़ाई ॥ चारोंयुगनि बात चलि आई ॥ ११० ॥

दो० । अरुपै जब लगि जियत हम खाये नृपको लोन ।
मिटै न कारज मोह के शीस जाय बरु क्योंन ॥ १११ ॥
हे सुत विद्या भैरवी मेरे अति बलवान ।
साबर मंत्र प्रत्यक्ष कलि तामह सब परमान ॥ ११२ ॥
ता विद्या के जोरते सरधा धरम समेत ।
विष्णु भक्ति के निकटतें हरिहों नृपके हेत ॥ ११३ ॥
अबचलि विद्या भैरवी पठवै करि यह ब्याज ।
स्वांग चारिहू निकसिके बाहिर गये समाज ॥ ११४ ॥

सां० । रोला०—सांतिकहीकरुनासों आली अब सरधा सुधि पाई । चलिये बेगहि विष्णु भक्ति को दीजै यह सुधि जाई ॥ कीन्हो मतो कपाली मिलिजो है ताको संदेहू । करुना कही प्रताप आपके खेह खांयगे येहू ॥ ११५ ॥

दो० । ऐसे दोऊ स्वांगये आपुस में बतराय ।
गये सभातें बाहिरे बहुरि उठे नट गाय ॥ ११६

इति श्री प्रबोध चन्द्रोदय नाटके पाषण्ड स्वरूप वर्णनो नाम तृतीयोऽङ्कः ३ ॥

———०———

श्रीलक्षणभट्टोबाच । दो० यों पाषाड स्वरूप को नटवर नृपहिं दिखाय ।
कह्यो कि स्वांग विवेक अब ऐहैं सहित सहाय ॥ १ ॥

चौ०—योंहीं अन्तर खांग मयची । आयों बनि अतिहौं सुंदरची ॥ ऐसे कहत सभा मधि आई । मुदितातें मैं यह सुधि पाई ॥ २ ॥

दो० । बहु कल छलतें भैरवी विद्या अचका जाय ।
गहि सरधा को छिप्रही गई अकाश उड़ाय ॥ ३ ॥

भुजंगप्रयातछं०—चहै जो तहां तें पटकि महिगिरावै । जुकोऊ बहुरि खोज सरधा न पावै ॥ जुती भक्ति हरिकी जु तापर सहाई । तुरंतहि कृपाकरि तहां तै बचाई ॥ सु जबते परी बात यह कान मेरे । दई आग मानो न आराम हेरे ॥ चहै चित्त आतुर कुशलताहि देखों ॥ बड़े भाग अपने समै ताहि लेखों ॥ ४ ॥

दो० आप गयो ततकालही स्वांग सारधा नारि।
देखि मइत्री मुदित उठि मिली सनेह संभारि ॥ ५
कुशल प्रश्न दोउन कियो बहु तक करि करि प्रीत।
बैठि मयत्री पुनि कह्यो ऐ सरधा मम मीत ॥ ६
करी जु विद्या भैरवी तुमसों दीठो जाय।
सो मैं मुदिता पै सकल समाचार सुनि पाय ॥ ७
तदपि तुम्हारे बदन तें चाहति सुन्यो बहोर।
कैसे वह हत भागने तुमपै कीन्हों जोर ॥ ८

सरधाउबाच। चौ०—जानन हारी भेद छिपे की। एधन मेरे प्रान हिये की ॥ कैसे कहों जो मोपै बीती। होतकम्प सुमिरत वह रीती ॥ श्री हरिभक्ति कृपाते मानों। फिरिके जन्म भयो जग जानों ॥ जो वह प्रबल बलाय अभागी। सों बचि भई दरस तुव भागी ॥ ९ ॥

मयत्रीउबाच। बोली बहुरि मयत्री ऐसौ। ऐ सुजान अब डरमति वैसौ ॥ १० ॥

दो० वह जो विद्या भैरवी ऊती समान पहार।
बिष्णु भक्ति केतेज अब जरिकै भई सुछार ॥ ११ ॥
अब कछु अपने चित्त में चिन्ता मतिही आन।
वाकठोर की कुटिलता व्यौरा सहित बखान ॥ १२ ॥

सरधाउबाच० कलहंस—सरधा कहि बलिजांव हरिभक्ति केरे नांव ॥ वहजो अविद्याकूर। विद्यामनो पुरनूर ॥ ज्यों चमकि चपला जाय। यों परी हमपर आय ॥ ज्यों गिरत जुर्राबाज। तीतरलवा के काज ॥ गहि धर्म को इक हाथ। इक हाथ तैंमोमाथ ॥ गहि लैगई आकाश। तहं रूप निज परकाश ॥ लखि भयो हमको त्रास। रहि जियन की नहिं आस ॥ तब कियो रुदन पुकारि। श्रीबिष्णु भक्ति संभारि ॥ आरत हमारे बैन। सोसुनत करुणा ऐन ॥ उरदयासिंधु समान लाग्यो हलोरे खान ॥ १३ ॥

दो० देखि हमें व्याकुल बिकल सुनि अति आरत बैन।
भकुटि विकट करि डांट हरि भक्ति तरेरे नैन ॥ १४ ॥

चौ०—महा प्रतापी ताहि कीव्यापी। अवलोकतही थरथर कांपी ॥ परी अचेत भूमि थल माहीं। रही न शक्ति उठनकी ताहीं ॥ देखि दुखित सुहिं धर्म समेता। कीन्ह कोप अति कृपा निकेता ॥ मोह नृपति प्रति अति अनखानी। सहित रोष बोली योंबानी ॥ इन सठ इतनी करी ढिठाई। ममस्थान भैरवी पठाई ॥ सरधा को मम आश्रित जानी। मारन चहत ताहि अभिमानी। इन असहाय विवेकहि जाना। मन अपने बस करि बौराना ॥ अब यह सठ सम गनत नकाहू। सो अपने बोये फल खाहू ॥ १५ ॥

दो० अब विवेक के माथ पर हाथ धर्यो मैं आज।
यासठ को शिक्षा करौं सजै बिजै को साज ॥ १६ ॥
ऐसे कहि मोसों कह्यो कहि विवेक सोंजाय।
सजै सैन शंसय तजै मैं सब भांति सहाय ॥ १७ ॥

छाकलिका छन्द—मोह मूढ़ अति ढीठ भयो। चाहिय याहि सजाय दयो ॥ यातें अब हठिसंजुगकरौं। कालमादिक भैते जिन डरौं ॥ वैरागादिबीर ममबली। करिहैंतुवसहायविधि भली ॥ संजुग समय पहुंचि हौं महूं। छिन में वामूरखको दहूं ॥ तुम चित सुचित राखियो अपना। प्रकटै बोध करो सोइ यतना ॥ १८ ॥

दो० यह संदेस लैजात मैं नृप विवेक के पास।
कहउ मयत्नी तू कहां तबलो करिहे बास ॥ १९ ॥

चौ०—सुनि यह सरधाकी बरबानी। विष्णु भक्ति महिमा सुखखानी ॥ अति हरषाय मयत्नी भाष्यो। विष्णु भक्ति जोयह चित राख्यो ॥ तौ यह महामोह अभिमानी। आयुसिरानी यह मैंजानी ॥ जाय नृपति पहं आप सवेरी। तिनके सब संदेह निवेरी ॥ बंधवाउब परिकर कहि नीती। भक्ति प्रताप मोह दलजीती ॥ २० ॥

दो० तबलों अनुकम्पाहमैं मुदिता करुणा समेत।
छाहैं चारिउ बहिन अब आपुस माहिं सचेत ॥ २१ ॥

सुहृदय जिन जननको करिहों तहां निकेत।
नृपविवेक के युद्धको साज सवारन हेत ॥ २२ ॥

सरधाउवाच०हाकलिका छन्द—सरधा बोली आछीलली बसिये जाय ठांवड़ै भली ॥ विष्णु भक्तिपै मैं यह सुनी। तीरथ एक निकट सुरधुनी ॥ शुभगचक्र ताकों सब कहै। इन द्योसन विवेक तहं अहै ॥ बाट उपनिषद् की तहं लहै। ताबिनु बहुत उदासो रहै ॥ २३ ॥

हरिगीतिका छन्द—सुमतिनामा बाम दृगी निकटसोबैठी अहै। बचन जेमीमांसके हैं बहुत विधि भाषत रहै ॥ इन्द्रादिकनको भोग जामें यज्ञ करवायो चहै। तिहि हेत नृप उपनिषदहू से मिलन औसर नहिं लहै २४ ॥

मयची० दो० कह्यो मयची जोरि कर चलिये आपुन हाल।
विष्णु भक्ति जोकछु कही करिये वही उताल ॥ २५ ॥
नृपति कदाचित सुमतिके वचनन माहिं लुभाय।
सुरत उपनिषद की तजैं तौ सब काज नसाय ॥ २६ ॥
ऐसे सरधा मयची दुवोंस्वांग बतराय।
गये सभाते बाहिरे तबबोल्यो नटराय ॥ २७ ॥
राजा राज विवेक सुनिविष्णुभक्ति संदेस।
अति हरषित अब सज्जत है अपनी सैन सुदेश ॥ २८ ॥

पंकजबाटिका छन्द—आयो तबहिं विवेक भूप। तेजवंत सो स्वांग रूप ॥ आगे आगे बेतपान। करत सबन को सावधान ॥ तहां सिंहासन धरि बनाय। तापर बैठ विवेक राय ॥ करिके कछु इक प्रकट रोष। लगे मोह को कहन दोष ॥ २९ ॥

विवेकउवाच। संयुता छन्द—यह मोह मूढ़ विशेषिये। अति पाप भाजन लेखिये ॥ यहि नाहिं आगम शोच है। अपराधही पर रोस है ॥ अपनो कियो फल पाय है। निज कर्म्म ते सठ जाय है ॥ ३० ॥

पंकजबाटिका छन्द—देखो जु ब्रह्म अविकार एक। आ-

नंद सिंधु महिमा अनेक ॥ शोभा अपार अति रूप जास। सो यह नरेश मन तनय तास ॥ ताकी यह महिमा को मिटाय। अति कियो दीन कछु कहि न जाय ॥ बहु जन्म मरनदुख विविधि भांति। यासे समुद्र बूड़त तिराति ॥ यह नाहिं कछू मनको सुभाव। यह महा मोह संगत प्रभाव ॥ नहिं जानि परै यह कहा सोह। जो करत बुराई मन कि मोह ॥ मन समीप यह प्रकट बात। अमी अवत नित दिवस रात ॥ मोह संग तै तिहि बिहाय। अचवत बिष बिषया नहि अघाय ॥ ३१ ॥

दो० श्रीहरिभक्ति जु कृपाकरि भई मोहिं अनुकूल।
तो अब या सठ मोहको खोदि बहावत मूल ॥ ३२ ॥

चौ०—बड़ो बीर योधा एक वाके। कुसुम धनुष सर है कर जाके ॥ काम नाम बामहु संग लीन्हें। ब्रह्मादिक जिन निज बसि कीन्हें ॥ है हरौल जु मोहके सोई। प्रथम ताहि जीते जय होई ॥ ताहि जितै अस ममदल माहीं। है इक बस्तु बिचारहि पाहीं ॥ बेत पान नृप तबहिं बुलायो। विद्या वेद नाम सो आयो ॥ ३३ ॥

दो० बेगि कह्यो तासों नृपति बस्तु बिचारहि ल्याय।
चल्यो तहांते स्वांगसो महिलो शीस नवाय ॥ ३४ ॥

तोमर छन्द—पाट बस्तु बिचार। आयो स्वांग सुधार ॥ तहं बेद विद्या जाय। कहि नृप निदेस सुनाय ॥ ३५ ॥

बस्तुबिचारउबाच। चौ०—बोल्यो बस्तु विचार रिसाई। है यह काम बड़ो दुखदाई ॥ दगाबाज याते नहिं कोई। छल करि इन सब जगत छलोई ॥ महा नीच यहि शोच न राई। करत सदा अपनीही भाई ॥ लैके नारि नरक को सामा। करत फिरत सबको सुख श्यामा ॥ ३६ ॥

दो० जे नरपरम प्रवीन जग जानत सकल विचार।
तेउ कामकी कुटिलता होत मूढ़ सम नार ॥ ३७ ॥

तोमर छं०—भे कामके बसि मंद। भइ डीठ मानोबंद॥ लखि कहत सुन्दरि नारि। कछु करत नाहिं बिचारि॥ कल कनक भूषन अंग। बहु नगन जटित सुरंग॥ बहु रंग अंग दुकूल। संयुत सुगंध सुफूल॥ औरो जुविधि सिंगार। तिहि देखि बरणत नार॥ ३८॥

दो० जो निजु देखिय नारितन बिन भूषन बिनबास।
हाड़ चाम मज्जारुधिर को है धाम कुबास॥ ३९॥
भूषन बसन प्रकाश युत तियलखि नर बौराय।
औगुन तासु गुने नहीं जिति पतंग जरि जाय॥ ४०॥

चौ०—चहिय मानुषहि मानुष ताई। करै बिचार सार ठहराई॥ मानव देह न सार पिछाना। तौ पशु जिमि बिनु पूछ दुषाना॥ अहिजो चिच बिचिचछ होई। ताकहं बुध कर गहै न कोई॥ बुधजन बिषै बिषै करि जानै। ब्रह्म बिचार सार परमानै॥ ४१॥

दो० सार एक हरि नाम है जगत बिषै बिनुसार।
जैसे मोती ओसको मिटत न लागे बार॥ ४२॥

घोटक छं०—यह काम मयो जग बाम सबै। बिन काम बिराम करै न दबै॥ सब लोगन को निज भोगन में। बसि कै कसि कीन्ह कुयोगन में॥ हठि आपुन टेककरी सुकरी। नहिं बूझत मूढ़महा जुछुरी॥ कोउ नाहिं जुयाहि बुझाय कहै। सठ कैसेहु नेक बिचार गहै॥ ४३॥

अरिला छं०—जो बियतन सो तेरो परम सनेह है। सो यह लोहू मांस हाड़की देह है॥ चमकत छटा बिलास रूपयों देखिये। जाको है यहरूप सुनारिन लेखिये॥ ४४॥

दो० तन प्रकाश है जासुको तासों करिय सनेह।
जो बिन देह जु खेह है यह बिचार चित देह॥ ४५॥
ऐसे विद्या बेदसों कहिकै वस्तु बिचार।
कह्यो समीप बिवेक के कीन्हो जाय जुहार॥ ४६॥

चञ्चला छं०—हाथ जोरिबिनती कहि रूप बिवेक सों।

कौन काजराज आज सुरत कीनहौं॥ देहुनाथ आयसु सोत-
जि सकोचको। आपके प्रतापकरौं पलक एकमें ॥ ४७ ॥

विवेक उवाच० पंकज वाटिका छं०—बोल्यो ताहि सरा-
हि सुराज। होइहै तोसों सकलो काज ॥ बन्यो मोहते युद्धजु
मोहिं। तातें वेग बुलायौं तोहिं ॥ तासु अनै है बलीजु काम।
है तासों तेरो संग्राम ॥ कछुधौं तोहि कहा हथियार
जातै युद्ध जीति है मार ॥ ४८ ॥

वस्तु विचार उवाच० चौ०—सुनिन्द्रप आयसु वस्तु
विचारा। निर्त्त कियो करि हर्ष अपारा। लग्यो कहन पर
ताप तुम्हारे। कितक बात यह निकट हमारे॥ यद्यपि काम
कहावत भारी। सुमन धनुष सायक करधारी॥ मैं सेवक
तुव अस्त्र न राखों। पैन्द्रप आन किये बल भाषौं॥ जाहिन
काम युद्धमें पायो। मेरी दृष्ट सामुहे आयो॥ ताहिन आप
सत्य करि मानो॥ केहर करी पछारयो जानो॥ ४९॥

दो० ऐसो पटकों भूमि पर ताहि उड़ाय फिराय।
पुनिमनोज के ओजको खोजन पायो जाय॥ ५०॥

चौ०—वाके बड़ी एक बल नारी। जातें कियो जगत बस
चारी॥ सो नारी मैं नीके जानी। है मल भाजन औगुण
खानी॥ हाड़मास मज्जा अरु चामा। अति दुरगन्ध अपा-
वन धामा॥ तासु बिलास छुटा रुचि जैसे। बहुरि अंध्यारी
बदरी तैसे॥ ५१॥

दो० मम प्रताप आतप वृषभ तिय सुख रंग पतङ्ग।
उड़त न लागहि बार तेहि कितक बहोरि अनङ्ग॥ ५२॥

विवेक उवाच० सुगीतका छं०—सुनि वचन वस्तु वि-
चारि के बोल्यो नृपति सुखपाय। तू कामको रण जीति है
यह परत मोहिं लखाय॥ पैहै छली वह कुटिल खल जिन
छले मुनि समुदाय। नारदादि डिगाय दीन्हे शिव समाधि
चलाय॥ सुरासुरभी सुंदरी अरु तीन तंची नाद। नृत्यदी-

पति बाग उपवन मोर कोकिल नाद ॥ इन्हें आदि उद्दीप जेते अहैं तासु सहाय । संदेह तू मति कछू तिनके फंद में परि जाय ॥ ५३ ॥

बसु बिचार उवाच० चञ्चला छं०—आपके प्रताप राज सबै काज सहल । काम की जमात नाथ धूम कोसा पहल । आयसु अब दीजिये मुहिं मारुत जिमि जाऊं । कामको निपाति आनि चरन सीस नाऊं ॥ ५४ ॥

दो० सुनिकै बसु बिचार के बचन भूप हरषाय ।
तुरतहि ताहि बिदा कियो सिरोपाव पहिराय ॥ ५५ ॥

चौ०—बहुरि भूप उरमाहिं बिचारी । बेतपानिको लियो हंकारी ॥ कह्यो छमा को ल्याव बुलाई । करै क्रोध सों जाय लराई ॥ मैं यह अपने मन ठहराई । ताबिन क्रोध जीति नहिं जाई ॥ बेतपानि कहिभलो सिधायो । गयो छमा जहं स्वांग बनायो ॥ कह्यो कि बेगि बुलायो राजै । तुम्हैं क्रोध जीतन के काजै ॥ ५६ ॥

छम उवाच० दो० छमा कही हंसि जीतिबो क्रोधहि केतिक बात ।
जो मुहिं नृप आयसु कियो छनमें करो निपात ॥ ५७ ॥

कलहंस छं०—देखौ क्रोध रहै जेहि धाम । तहां अंधेरो आठौ याम ॥ यद्यपि देखत दीऊ अच्छ । जगतप्र काशित है परतच्छ ॥ तद्यपि कछु उनसूझत नाहिं । इत उत भटकैठोकर खाहिं ॥ अबि २ जब कछु न बसाय परत कहूं तब नीचे जाय ॥ ५८ ॥

सुप्रियाछंद—तेहि धाम जास जुमें करौं । छिन एकमें तम को हरौं । सब जगतताहि प्रकाश है । शीतल सुभग सुखराश है ॥ सब दुसहदुष्ट बचादिजो । नरकूर तिनको बादिजो । अति कठिन खलको मारहू । बिनपाप निरदाचारहू ॥ सब मोहिं येनहिं व्यापहीं । जिमि अचलपवन न कांपहीं ॥ ५९ ॥

दो० सर वर बर्षा सरित जिमि सिंधि सिंधुहिं जाहिं ॥
ता कहं छोभ न होत कछु सरिता आप नसाहिं ॥ ६० ॥

चौ०—रहत समुद्र मगन रस अपने। छोड़त नहिं मर-यादहि सपने॥ तैसे मैं अस्थिर जेहि ठाऊं। तहां क्रोध को सहज नसाऊं॥ आंधी माहिं धूरि जो होई। ताकहं नैन तरैरै कोई॥ तौ वह आंखिन माहिं समावै। पीर होइ अतिसै दुख पावै॥ रहै मूंदि जो शीस नवाई। तौ आंधी आपुहि उड़िजाई॥ ६१॥

दो० सरिता बरषा पाय तरु देत सतंग गिराय।
वृद्ध करत फूलत फरत बेत रहत सिर नाय॥ ६२॥
ऐसे बचनन को कहत स्वांग क्षमा को आय।
प्रथम नत्य करि नृपतिको शीस नवायो जाय॥ ६३॥

चौ०—प्रत्युत्तर। क्षमाविवेक चरण सिर नायो। नृपकहि कृपाल बज़रि बैठायो॥ क्षमा कही केहि काज बुलायो। नृप कह क्रोधहि मूंड़ उठायो॥ क्षमा कही मुहिं आयसु दीजै। कह नृप बधिये कैबस कीजै॥ ६४॥

दो० क्षमा कही तुव तेजतें गरद करों छन माहि।
जैसे महिषासुर बध्यो सुरहित लागि शिवाहि॥ ६५॥
नृपकहि क्रोधहि अस्त्रबज़ अरु बज़ बचन लवार।
तू कज़ कैसे अस्त्र सों करे हे ताहि प्रहार॥ ६६॥

क्षमाउवाच० कलहंस छं०—सहन शीलता मेरे ढाल। बानी नरम कठिन करवाल॥ जो मुहिं बुरो कहै कोउ आय। कै कज़ दण्डकरै बिन न्याय॥ तातें मैं दृढ़िकरों भलाय। क्रोध घातिनी सांग सुआय। है अभेद तन लाग मौन। बल प्रभु तुव परताप तौन॥ यह मम अस्त्र शस्त्र गति नाथ। जो आवै काहू के हाथ॥ तासों जीति सकै नहिं कोय। तीन लोक ताके बस होय॥ तुव प्रताप बलराजा आज। हतौं क्रोध जिमि लवा सुबाज॥ ६७॥

दो० जेहि छन तुव परताप बल क्रोध बध्यो मैं जाय।
हिंसा मत्सर मान मद सहज मरैं अकुलाय॥ ६८॥

कुमारलता छं०—बिबेक गुन देखो। छमाबल बिसेषो॥ अवसि क्रोध सेनो। जितै बात केनो॥ सराहत सुबीरा। दियो ताहि बीरा॥ छमा सीस नायो। बिदा करि पठायो॥ ६६॥

दो० गई अखाड़े ते निकसि यहि बिधि छमासरूप।
बहुरि दूत सन्तोष को लेन पठायो भूप॥ ७०॥

चौ०—गयो वेद विद्या सों छरिया। जहं सन्तोष स्वांग नट धरिया॥ कह्यो बेगि भूपाल बुलायो। तुम्हैं लोभ पर चहत पठायो॥ सुनि सन्तोष उठा हरषाई। चला लोभ की कहत निचाई॥ यहि सम ठग दूजो नहिं भाई। इन सब जगकी मति भरमाई॥ याके बस जन पर बस होई। नीच ऊंच कछु गनै न कोई॥ जाय धनिन की करत बड़ाई। झूठ सांच बहु भांति बनाई॥ सुरपति सुर तरु धनद समाना। बलि दधीचि शिव करण प्रमाना॥ तेनहिं तिन्है बिलोकत नीके। भृकुटि बिकट करि बोलत फीके॥ तदपि लोभ बस उनकी मानै। बहुरि झूठ कछु अस्तुति ठानै॥ जात न्हपन पहं जन बस लोभा। धनकी आग छोड़ सब शोभा॥ हाथ जोरि सन्मुख होइ रहई। नीच ऊंच कछु कहहि सुकरई॥ सम्पति प्रापति तौ सन्देहा। प्रथमहिं हार जात निज देहा॥ जन जन यांचत फिरत भिखारी। कोउ फिरि मांग कहत कोउ गारी॥ तापर काढ़त दांत घिघानौ। सेा यह चोट लोभ की जानौ॥ पुनि अपमान देत दुख भारी। करत लोभयों जनकी खारी॥ ऐसे भेष अनेक बनावत। भांति अनेक उपाय उपावत॥ धावत धावत जन्म गवांवत। जो कछु पावन हार सुपावत॥ ७१॥

दो० ऐसी भांति अनेक विधि जहां तहां जन दीन।
लोभ विवस भटकत मरत यथा कुवेनी मीन॥ ७२

चौ०—जाके हृदय अहै मम बासा तहां सहज आनन्द

प्रकाशा ॥ समय परापति जो कछु होई । ताते सुखी सदा जन सोई ॥ सकल परापतिसुख के हेतू । सोसुख सदा सहज मम केतू ॥ जहां लोभ तहं सुख नहिं राई । जो कुबेर की सम्पति पाई ॥ यह मम सहज प्रकृति उनमाहीं । जाकी लोभ न दावै छाहीं ॥ ताआपन योदीन नमानै । सदा आप को पूरण जानै ॥ ७३ ॥

दो० रहैं सदा संतुष्टते दीनहोंहिं केहि हेत ।
सम्पति हरष न बिपति दुख सहज परम सुख लेत । ७४ ॥

चौ०—कहहु लोभतें कासुख भाई । पूरणता जहं कबहु नपाई ॥ जाके संग इतो श्रम माना । मर्कट जिमि निर्त्तत गति नाना ॥ जात न तबहु भोग बिलाशा । सोतो छूटिजात अनयाशा ॥ करिकै लोभ होत जेदामा । धरे रहत तेठांव-हिंठामा ॥ तातें कहा घटत है याहीं । जोबिन् काजै हाहा खाहीं ॥ ७५ ॥

दो० याचन नर घरघर फिरत पायन परत अनेक ।
तुव प्रापति पायन परै हायन गहत विवेक । ७६ ॥

स०—चाहै जितौ चित चाहत अनेकनि होत तितौदुख ही जुबिचारै । हैइन इन्द्रिन को सुख हेत सुतेरौ नहेत जोनी के निहारै ॥ पेट लफाये फिरै जुकहा अति दीन दुवारनदांत निकारै । लैहरिकी किन भक्ति सदा जुचहै सुखसों अपनी निस्तारै ॥ ७७ ॥

स०—दैने दई फलफूल अनेकऔ मूलजितै तिततोहि अ-हारै । डासनको कुशलै परिभूमि चहै जितही तितपाय प-सारै ॥ ताल तरंगि न ताप हरै अरु सूरज पावक सीत नि-वारै । याके लिये हठिकै सठ तू कह पांवर पौरन हाथ प-सारै ॥ ७८ ॥

स०—छोड़िकै आश सबै जगकी हियमें सुखशान्ति को बास करौ । यह जीवनहू कीतजौ सरधा जग जीवतही वि

नमीच मरौ ॥ अबलों जुभई सुभई अबहूं चितचेत विवेक कि ओर ढरौ। तुम काकेहौ कोहौ कहांहौ कछू अपनी सुधि आपन आप धरौ ॥ ७९ ॥

स०—काल निहारत कालसदा सब लोग विचारत ही पचिहारै। कोऊ बच्यो नकहूं कितहूं जलहूं थल व्योम पताल विचारै ॥ हैछिन एक को पेखनों सोहू तहां कहि कौन की आश निहारै। यामेंकहा तुहि अर्थ मिलै यों बिनर्थहि मानुष जन्म निवारै ॥ ८० ॥

स०—तू ममता मद माहिं पग्यो रचिकै पचिकै बहुधाम सवांरै। लोभ अधीन जुपापको मूल रह्यो चित भूलन आप संभारै ॥ काल रह्योठगि सांस गनै छिन मांझ लवा जिमि बाज पछारै। नन्दके नन्दहि क्योंनभजै जो सदा अपनेजन कौ प्रतिपारै ॥ ८१ ॥

तोमरछन्द—सन्तोषअति हरषात। ऐसे कहत बहुबात ॥ प्रथमै सभा मधि आय। कछु कियो निर्त्त सुभाय ॥ तब नृपति के ढिग आय। कह वेतपानि सुनाय ॥ सन्तोष को जेहि काज। कीन्हों सुरत महराज ॥ सो भयो हाजिर आय। तेहि कहा देहि रजाय ॥ ८२ ॥

दो० नृपति कृपाकरिकै हरषि लीन्हों निकट बुलाय।
शीसनाय सन्तोष तब नृपहिं जुहार्यो जाय ॥ ८३ ॥

विवेक० चौ०—कह्यो विवेक हरषिकैताही। तात लोभ यह जन दुखदाही ॥ वेगहि जाय निपातिय ताही। तो विन वह सठ जीति नजाही ॥ यह कारन तोहीं ते ह्वैहै। मोको यह नीके निश्चयहै ॥ ८४ ॥

सन्तोष०—अवशि नाथ यह चाहौं कीन्हा। अबलों आयसु प्रभु नहिं दीन्हा ॥ नतरु काज यह केतिक नाथा। छिन महं ताहि करौं बिन माथा ॥ अब जो प्रभु मोहिं आयसु दयऊ। जानिय लोभ मूलतें गयऊ ८५ ॥

दो० जैसे केसी असुर को पटक्यो कान्ह सुजान।
तुवप्रताप तिमि लोभ के हरिहों छिनमें प्रान ॥ ८६ ॥
सुनिबानी सन्तोष की हरषि दियो नृपपान।
बन्दन करि पद जोरि कै तब तिन कियो पयान ॥ ८७ ॥

भुजंगप्रयात छन्द—तबहीं गनिक को बन्यो स्वांग आयो। लिये पानि पत्रा नृपतिपै सिधायो ॥ कहीयहसमैहैबिजैको सुहाई। परस्थानकीजै गजानन मनाई ॥ ८८ ॥

दो० सुनि नृप पण्डित बैन कह्यो सुबुद्धि नकीब सों।
खबर देहु मम सैन योधा होहिं तयार सब ॥ ८९ ॥

कलहंसछन्द—राज काज के साज जितेक। नृपके आगे खरे तितेक। तिनमें तै इक उठो पुकार। सैनपसिगरे होहु तयार ॥ नृपतिविवेक होत असवार। चहत मोह को कियो सिकार ॥ तातें समर साज सबसाज। अपने अपने सहित समाज ॥ आय अगन मैं ठाढ़े होह। कीजै आज मोह सों लोह ॥ ९० ॥

दो० सम दम नेम यमादि सब जे विवेक के बीर।
होहु सवार तयार सब बाहु बली रणधीर ॥ ९१ ॥

त्रिभिप्रालिकाछं०—बीर सम आदि सबसाजि तन चान-को। खड्ग अरु चर्म लये शक्ति धनबानको ॥ धीर बलवान अति हर्ष को सबलये। स्वांग ऐसे बहुत आन ठाढ़े भये ॥ ९२ ॥

दो० तब नृप सारथि सों कही बेगवन्त रथआन।
ताही छिन इक रथ सुभग लैआयो रथवान ॥ ९३ ॥
हरिकों सुमिरि विवेक तब उठे गनेश मनाय।
पण्डित पैआयसु लियो रथ पर बैठो जाय ॥ ९४ ॥

अर्द्धभुजंगी छन्द—चमर छत्र राजै। नृपति पै बिराजै ॥ भयो संख नादा। चले बहु पियादा ॥ नकीबन पुकारा। भये सब सवारा ॥ चली सैन बनिकै। नगारे धमकिकै ॥ नफीरी पुकारी। भई रोर भारी ॥ सुकड़ खेतगावैं। समर रस सुनावैं ॥ जुयोधा कहावैं। हरष कोबढ़ावैं ॥ ९५ ॥

कलहंसछं—ताही समय त्याग वैराग। लीन्हें संग सहाय-क त्याग ॥ आय भूपको कियो प्रनाम। पूछी नृपति कहा है नाम ॥ ९९ ॥

दो० बोलो हम वैराग अरु त्याग दुवो असवार।
भक्ति रावरे पासको पठयो हमें गुहार ॥ ९७ ॥

चौ०—सुनि विवेक अतिशै सुख पायो। सादर तिनको हृदय लगायो ॥ लगे भक्ति की करन बड़ाई। मोपर दया करी अधिकाई ॥ है हरिभक्ति सहाय हमारी। तौ नहिं मोहिं मोहदल भारी ॥ अब मोकों यह है परतीती। है मन जय संशय तें रीती ॥ यों विवेक अतिशै हरषाई। आगे को तब कटक चलाई ॥ ९८ ॥

हाकलिका छन्द—प्रथमहिं जहां बनारस बनी। तितको चली विवेकहि अनी ॥ भयो प्रवेश पुरीमें जबै। कही सारथी नृपसें तबै ॥ महाराज यह काशी पुरी। अति पुनीत अघ काटन छुरी ॥ विद्यावान रहत ह्यां घने। जे तुम्हरी आज्ञा में बने ॥ इहां मोह अब चाहत रह्यो। अपनो हुकुम चलावन चह्यो ॥ थाना प्रथम दम्भको दियो। तानें बहुते अनरथ कियो ॥ जोजन आपुन के ह्वां अहैं। ते सब दम्भहि डरपत रहैं ॥ ९९ ॥

दो० नृपति सारथी सों कह्यो जो हरिभक्ति सहाय।
तौ यह सठ सब पायहैं अपनी आज सजाय ॥ १०० ॥

सोमराजीछन्द—आगे बहुरि चला रथ राजन। मन्दिर एक तहां सुख साजन ॥ अति विशाल सुन्दर तन भातन। द्वार भीर नर उज्वल गातन ॥ पूछत भयो नृपति रथवानहिं। यह अस्थान कहा सुख खानहिं ॥ १०१ ॥

रथवान० सुगीतिकाछं०—महाराज विराजहीं श्रीविन्द माधव देव। दरश तें अघ मिटत सिगरे मुद्रहोतकलेव ॥ लहत सुभगति परसि पद जल जात मर सुर सेव। विश्वास

करि जे नाम सुमिरत कामप्रावत तेव ॥ सुनत वचन विवेक रथतें उतर गोतेहि धाम। करषि कै श्रीविन्दमाधव परसि पद अभिराम ॥ पुनि विनय प्रीति समेत करि याचन कियो यहकाम। दीजिये वर जीतिये जेहि मोह को संग्राम ॥१०२॥

हरिगीतका छं०—यहि भांति पूजि विवेक माधव पुनि चढ़े रथ आनि कै। ताही समय दूक स्वांग चारन खबर दीन्हीं आनि कै ॥ महराज की सुनिसैन आवत मोह के खर भरपरी। बोलानिये भजि जाय तो तौ लीजिये याही घरी ॥ १०३ ॥

दो० कही सारथी सों नृपति चपल करो हे यान।
जानन पावै मोह भजि बचे अल्प दुख दान ॥ १०४ ॥
गयउ सभातें बाहिरो यहि विधि स्वांग विवेक।
गाय उठे नटशिष्य तब निर्भर भयो अनेक ॥ १०५ ॥

इति श्री प्रबोध चन्द्रोदय नाटके विवेक सैन वर्णनो नाम चतुर्थटङ्कः ४ ॥

श्रीछ०भ०वा० दो० ऐसें कला विवेक की देखि प्रमान दिखाय।
भूपतिकीरति ब्रह्मसों बढ़ारि काढ़ी नट आय ॥ १ ॥
न० वा० श्रीहरि भक्ति संदेस दे पठयो सरधा साथ।
सो सरधा संजुग समै रही विवेक सुसाथ ॥ २ ॥
जूझे योधा युद्ध में जीते मोह सहाय।
समाचार सो भक्ति सों सरधा कहि हे आय ॥ ३ ॥
यद्यपि नृपति विवेक के द्रोही हैं कामादि।
तद्यपि कुल सम्बन्धते सरधा लहेउ विषाद ॥ ४ ॥
वि० दो० क्षमादास सों शिष्य तब पूछेउ मंहि धरि माथ।
युद्धन कीन्हो स्वांग सजि केकारण मम नाथ ॥ ५ ॥
ज० भ० युद्ध करत जो स्वांग सजि तौ प्रति स्वांग अनेक।
बध होते ताते कह्यो वचन न युद्ध विवेक ॥ ६ ॥
ताही अन्तर सरधा स्वांग सभा में आइ।
ऐसे वचन न विधोवत कहत भई बिलखाइ ॥ ७ ॥

स० बरवै छं०—दई चरित कछु देखउ कहि नहिं जाय। प्रबल बंश इक छिन महं गयो बिलाय॥ सुन्दर हरियर बिरवा सुन्दर फूल। होत बहुरि पतझारउ ताही मूल॥ यदपि करत कामादिक तुम सन द्रोह। तद्यपि एक पितु जानक मिटत न छोह॥ वह शोभा मन मथकै परम सलोन। इन नैनन के देखत भै जल लोन॥ क्रोध लोभ मदमत्सर खल सब साज। जूझे करि करि करनी रण महं आज॥ समुझत तिनकी शोभा गुन परताप। कैसेउ होतन धीरज उर सन्ताप॥ बिसरत नाहिं बिसारे उन कर नेह। होत महा दुखदायक जगत सनेह॥ ८॥

दो० जो विचारि करि देखियत तौ कछु स्थिर नाहि।
जगत बुदबुदा नीरको उपजत अरु बिनसाहि॥ ९॥

क०—जाको जाको चाहै सोतौ जात है चला है सब कौनसी निबाहै नेह देहहू तौ छीजिये। रबिशशि तारागण सुरासुर सातो सिंधु भूमिहूं अकाश को बिनाशही पतीजिये॥ ब्रह्माश्रौ कीटलौं बिनाशवन्त दीसैं सब आपामान रहो सोतौ आपहू न जीजिये। कासों मानौ नातौ कासों करत हिताहित सो देख जु परत शोच काको काको किजिये॥ १०॥

दो० ऐसें समझति होंहिये जग मिथ्या परि मान।
तद्यपि तिनके गुन समुझि उर न लहत बिश्राम॥ ११॥
मोहिं कह्यो हो हरि भगति कछु विवेक सो जाय।
करै युद्ध हठि मोहसों सुधि सुबगि ले आय॥ १२॥

चौ०—मोको भक्ति बिदा जब कीन्हीं। तब श्री मुख ऐसे कहि दीन्हीं॥ अबलों बास हृतो मम काशी। अब तहं हिंसा बहुत प्रकाशी॥ शुभरुचक्रतीरथसुभनामा। अहैपवित्र अनूपम ठामा॥ शान्ति सहित बसिहौं तेहि ठाहीं। योंसंकेत कह्यो मुहि पाहीं॥ १३॥

दो० सेा घर में जैहो तहां भक्ति जहां सुखधाम।
तिन के दरशन के बिना मोहिं नहीं विश्राम ॥ १४ ॥
श्रीह० भ० दो० ऐसे सरधा बचन जब कहे सभा में आय।
तब नट वासी सभा मधि सुभग चक्र ठहराय ॥ १५ ॥
स्वांग भक्ति अरु शान्तिको बैठारो तहं आन।
लागे दोऊ स्वांग से आपुस माहिं बतान ॥ १६ ॥

शान्तिउवाच० चौ०—बोली शान्ति मधुर गहि पायन। अहै कृपानिधि भक्ति सुसायन॥ अरन रावरी जोजन आवै। तिनको शोक समुद्र नशावै॥ आपु सदा आनन्द परायन। सुखनिधान सुख मै शुभ दायन॥ सेा कछु शोच विवस कत आजू। कहिय कृपा करि सेा केहि काजू॥ १७॥

श्रीहरि भक्तिउवाच०तोमरछन्द—सुनि शान्ति बचन विनीत। बोली भगति करि प्रीत। सुनिये सुता सुकुमार। मोको न कबहुं खभार॥ पर अहैं जोजन सन्त। तिनकी रहति सुहिं चिन्त॥ राजा विवेक अरु मोह। इनसों बढ़ो अति द्रोह॥ सुनिपरी ऐसी सुद्ध। भयो दुहुनतें अति युद्ध॥ तेहि अहै चिन्ता मोहि। धों कौन की जय होहि॥ १८॥

शान्तिउवाच०चौ०—अहै दीन हित कृपा तिहारी। अहै सहाय नाहि परभारी॥ ताहि पराजय कतहुं नाहीं। यह निश्चै मेरे उर माहीं॥ जै यश सदा विवेक भुआरा॥ आपुन कत चित करिय खभारा॥ १९॥

हरिभक्ति उवाच० अम्रतगति छन्द—यह सांच शान्ति तुम भाखी। पर चित्त नाहि अभिलाषी॥ ताकी छिन प्रति सुभ चाहै। यह प्रीत सुभाव सदाहै॥ अबहा यहि काज पठाई। सेाऊ अबलों नहिं आई॥ २०॥

दो० ताही अन्तर सारधा निकट भक्ति के आय।
कही बधाई जीतिकी वन्दन करि दोउ पाय॥ २१॥

चौ०—सरधा देखि भक्ति हरषानी। बोली प्रेम सहित

महमानी ॥ कहउ विवेक कुशल जै पाई । तुमहूं कुशल रहत तहं जाई ॥ दुहूं दपन की सैन मझारी । तुम पायो छूटै दुख भारी ॥ सरधा कही अहो ठकुरायन । तुम्हरी कृपा कुशल सब ठायन ॥ देखि चरण अब अति सुख पायों । सकल दुःख को मूल नशायों ॥ भई विवेक कुशल जै तबहीं । आप कृपा करि चितयो जबहीं ॥ शान्ति देखि जननी हरषानी । आतुर दौरि चरन लपटानी ॥ सरधा शान्ति लियो उरलाई । बैठी भक्ति निकट सुख पाई ॥ २२ ॥

दो० सरधा सों पूछत भई बहुरि भक्ति सुखपाय ।
समाचार कहु मोहके रह्यो कि गयो पराय ॥ २३ ॥

स०दो० अहैं अभागी विमुखजे तुमतें अहे दयाल ।
ते जीवतहू मृतक सम तिन्हें अहे सब काल ॥ २४ ॥

भुजङ्गप्रयात छन्द—आपुन चलीं जब उछाहते इहांको । विदा मोहि कीन्हों नृपति पय तहांको ॥ विवेकहि कही मैं जु आज्ञा तुम्हारी । सुनेते तुरन्तै सजी सैन भारी ॥ बजी मङ्गलन्त्र भयो जो बगारा । जुरैं वीर बांके भये सब सवारा ॥ बड़े प्रातही रवि किरन जब प्रकाशी । चले सैन लैकै बड़े तेज राशी ॥ चढ़ी मोह उनते लिये फौज गाढ़ी । दुहूं ओर तें जुरि भई सैन ठाढ़ी ॥ दुहूं ओर बाजे नगारे सुभाऊ । जु सावन्त सूरन चढ़ो चित्त चाऊ ॥ बजे संख सहनाव भेरी नफीरी । भई कादरन की सुनत ज्योति पीरी ॥ जुकड़ खेत सावन्त मारू सुनावैं । भनैं बीर अस्तुति जुकड़खा बढ़ावैं ॥ दुहूंओर ऐसी भई रोर भारी । जु बहिरे भये ता समै देह धारी ॥ २५ ॥

दो० न्याय शास्त्र को दूत करि प्रथम विवेक नरेश ।
पठयो मोह समीप को ऐसे कहि सु संदेश ॥ २६ ॥

अ० ग०—अब मुक्ति पुरी सुख काशी । जहां हैं तपसी जन बासी ॥ अब सब दुख पावत तोतें । अब प्रथम छोड़ दे मोतें ॥

पुनि और पुन्यथल जेते। जहं रहत साधुजन तेते॥ तहं तू मति करो पयाना। तहं रहिहै मेरो थाना॥ अरु सुक्षत रहै जेहि ठांई। तिन्हते रुज दूरि सदाई॥ जे नर जु अधम अज्ञानी। जिन्ह हरि गुरु भक्ति नजानी॥ जहं अपनी सहित सहाई। तिन्हके उर पुर रुज जाई॥ २७॥

दो० नतरु शीसतव खड्गते आज समर महि माहिं।
काटि करों धरते जुदा स्यार कूकरा खाहिं॥ २८॥
अरु अभिमान जु सैनको राखत अपने गात।
सो छिननें सम भटनते परिहै दृष्टि परात॥ २९॥

चं० छं०—न्याय शास्त्र मोह के समीप जायकै जबै। विवेक कोनिदेश सोसुनायकै कही सबै॥ सुनत मोह मानि कोह कूदिकै उठो तबै। कह्यो किजाउ दूत तू नमारते इहांअबै॥ कहा करौं परंतु दूत बद्ध मोहिं नाफबै। दीजियो जवाबजा-य एक बातकी सबै॥ जु काम है कृपान सों सुहेत बात ते कबै। युद्ध को चढ़ी जुपैतो झूठ सों कहादबै॥ ३०॥

दो० न्यायशास्त्र को भाखिये मोह सैन निज हेरि।
लियो अगम पाखण्ड अरु चारुवाक को टेरि॥ ३१॥
कह्योकि तुम या दूतको मम प्रताप समुझाय।
काढ़ि देउ या सैनते कहे विवेकहि जाय॥ ३२॥
कही जाय निज भूप ढिग न्यायशास्त्र फिरिआय।
जो वाको भूपति कह्यो सकल कही समुझाय॥ ३३॥
तापाछे नृप मोह तब अपनी सहित सहाय।
चढ़ि सनसुख ठाढ़ो भयो युद्ध करन को आय॥ ३४॥
दूत विवेक महराज के भये सजग सब बीर।
लगे चलन दुहुं ओरते गोला बानरु तीर॥ ३५॥

रो० छन्द—तब उतबीर मोहके निकसे चारवाक अरुशास्त्र कुतर्का जेन अगम पाखण्ड आदिदै जिनके मते बसतहैं नर्क दूत विवेक की दिशितें चढ़िकै महाभार्त्त अरु न्याय। अगम भास्कर अरु मीमांसा आदि शास्त्र षट भाय॥ उह मिलि

भये नायक जिन मो होन लग्यो सम्बाद । सन्यध अस्त्रकिये दुहुंदिशि ते करि करि केहरि नाद ॥ ३६ ॥

शान्ति०सुप्रिया छं०—तब शांति सरधा सोंकहा । येमात यह अचरज महा ॥ ऐशास्त्र आगम आदिदै । इनमें विवाद सदा बदै ॥ कोउ आन देवबतावही । कोउ आनदेव पुजावही ॥ न्यारे रहत सब आप मैं । एसब भये मत पाप मैं ॥ यह बड़ो संशय मेटिये । संदेह यह मम मेटिये ॥ ३७ ॥

स०चौ०—अहो सुता मम प्रान अधारा । इहां न संशय करिय विचारा ॥ ये षटशास्त्र बिलग जे गाये । हैं सब एक बेद के जाये ॥ दुतिय ओर ते जो अरि कोई । इनके पितहि बिरोध सोई ॥ तौ एऊ सब मिलिके बातैं । अवशि लरोचाहैं पितु बातैं ॥ यदपि आप महं झगरत रहहीं । तदपि तात हित सब मिलि चहहीं ॥ अरु ए शास्त्र भिन्न जो रहहीं । भिन्न भिन्न अपनो मत कहहीं ॥ कोऊ कर्म प्रधान बतावै । कोऊ कालश्रेष्ठ करि गावै ॥ अगम शास्त्र रवि पूजन भाखै । कोऊ श्रेष्ठ हरि पूजन राखै ॥ सो सबरूप ब्रह्मके जानौ । या महं उर संदेह न आनौ ॥ जो कोउ काहू देवहि पूजै । जानि ब्रह्ममैं भावन दूजै ॥ सो सब होत ब्रह्म की पूजा । या महं कोऊ देवन दूजा ॥ ३८ ॥

दो० अरुजे पूजत देवतन भिन्न ब्रह्मतें जान ।
तेपापी हरिपद विमुख जड़मति अति अज्ञान ॥ ३९ ॥
अरुजे पूजत देवतन ऐसे उरमहं आनि ।
तिनकों प्रापत ब्रह्म सुख सोमैं करों बखानि ॥ ४०

हाक०छं०—जोसमुद्र कोउ देखोचहै । काहूनदमें परिकै बहै ॥तौ वाहीं महं ह्वैकै बहै। जाय अवश्य समुद्र मिलहै४१ ॥

चौ०तैसेहरिजोआनंदराशी।ब्रह्म सिंधु अबिगतअबिनाशी ॥ रूप सहित पूजत जे प्रानी । तासु प्रकाश देवता जानी ॥ काम

रहित पूजत जे प्रानी। पावत मुक्ति सकल सुख खानी॥ पुजत एक ब्रह्महित लागी। तेहरि पद पावत बड़ भागी॥ ४२॥

दो० ऐसें शास्त्रन के मते भिन्न भिन्न विलगान।
हैं परन्तु सब एकही शान्ति कीजिये जानि॥ ४३॥

ओह० भ० वा० विष्णु भक्ति पक्षी बजरि भिरे दुहूं दिशि बीर।
कहो अगमनी किन करी प्रथम धक्यो को धीर॥ ४४॥

स० रो० छं०—सरधा कही एक दिन तई दूक बार तौ ऐसी भई। लै शक्ति शूल कृपान दोऊ सैन एकै ह्वै गई॥ लागे चलन हथियार दूत उत मारु मारु पुकारहीं। गर्जैं महाबल तर्जि एकन एक बीर प्रचारहीं॥ कोउ परत महि कोउ लरत सनमुख करत खड्ग प्रहार को। कोउ चर्म आड़ि बचाय ताकों करत अपने वार को॥ लागे गिरन महि शीस रुण्डन तें रुधिर धारा बही। छूटत फुहारे रक्त के जनु फागु ऐसी ह्वै रही॥ कोउ हाथ बिनु कोउ पांव बिनु भट रुधिर संयुत देखिये। फूले पलास समूह मानौ रनअरन्न विशेखिये॥ कोउ परे शोणित कीच में कोउ मीच बसितहहीं भये। कोउ रुधिर धार प्रवाह में परि बूड़ितहीं मरंगये॥ परहिं जानि न आपनों परि एक से सब देखिये। कछु समुझि परत न ता समै को सूर कादर लेखिये॥ ४५॥

दो० घरी एक ऐसो भयो महा विकट संग्राम।
बजतक योधामोह के ऐसे आये काम॥ ४६॥
बजरि सबै पाखण्ड मिलि सिमिटि भये इकठौर।
गोल बांधि सनमुख चले वेद अचार की ओर॥ ४७॥

काव्य छन्द—उठे वेद आचार महाबल गर्जि इतै तब। सुनत तहां पाखण्ड लर्जि महि गिरे बिकल सब॥ कछुक भये बिन प्राण कछुक कर अस्त्र गिराये। कछुक डूबि गये गङ्ग कछू उत्तरहिं पराये॥ देखि बिकल पाखण्ड जैन तब

तुरतैं धाये। तिन कछु माया करी लोग सब इत भरमाये॥ तब शङ्कर आचार इतै तें उठि कै धायो। छिनमैं माया काटि जैन दलमारि चलायो॥ ४८॥

दो० कछु मारे बूड़े कछू दक्षिण गये पराय।
तिनको खोजरह्यो नहीं छिन मैं गये बिलाय॥ ४९॥
प्रबल बात के पात ज्यों सूखे जात उड़ाय।
तैसेये पाखण्ड सब पल महं गये नशाय॥ ५०॥

सुति मुनि शङ्कर आचार को पुरुषारथ जु उदार।
भक्ति सराह्यो निज बदन तब शङ्कर आचार॥ ५१॥
सरधासों पूछत भई बहुरि सुभक्ति सुजान।
और युद्ध कैसे भयो ब्यौरा सहित बखान॥ ५२॥

सर० तब कुतर्क अरु नास्तिक उठे मोह के बीर।
इतैन्याय मीमांसा जुरे जाय रण धीर॥ ५३॥

तोमर छं०—इनतें भयो अति युद्ध। दुहुं दिशि लरे करि क्रुद्ध॥ लगे करन अस्त्र प्रहार। दुहुं दिशि पुकारैं मार॥ चले लै शक्ति शूल प्रचण्ड। विकराल परिघ उदण्ड॥ सुन्नर कमंद कुठार। सर चक्र अरु तरवार॥ जो अस्त्र मारै जाहि। सोकाटि डारैताहि॥ मारैं भरम कोठांव। आड़ैं चरम करि दांव॥ ऐसे सके इक याम। कीन्हों कठिन संग्राम॥ तबन्याय अति बलबीर। मारे बिपुल बरतीर॥ भये शिथिल तिनके गात। मुखते न निकसै बात॥ सब अवहिं रुधिर शरीर। तब धरि सके नहिं धीर॥ ५४॥

दो० भये शिथिल व्याकुल विकल धारि सके नहिं धीर।
तब कुतर्क अरु नास्तिक भागे परम अधीर॥ ५५॥
यद्यपि मोह फेरे बहुत तनसुख भये न फेर।
जानि परे नहिं कित गये लोग रहे सब हेर॥ ५६॥

तोमर छं०—तब महा मोहहरषाय। तट लियो काम बुलाय॥ कह्यो तू तकत अबकाहि। सब सैन भाजी जाहि॥

तेरे धनुष सर बाम। ऐहै कबै पुनि काम ॥ तैं करि पराक्रम जाय। जाते विवेक पराय ॥ ५७ ॥

चौ०—ऐसे मोह काम सों भाष्यो। तब मनोज अपने उर माष्यो ॥ शीस नवाय चल्यो कहि स्वामी। देखहु आज गुलाम गुलामी ॥ अपनो यूथ जोरि सब लीन्हा। ऋतु बसन्त को आगे कीन्हा ॥ फूले बिटप कमल बन बिगसे। मनहुं काम के तरकस निकसे ॥ तिन पर भ्रमर बसे रस लोभा। मनहुंश्याम सरफोंकन शोभा ॥ जहां तहां कोकिला पुकारी। मनो नकीबन सैन संवारी ॥ खगगन शब्द रच्ही धुनिछाई। मनहुं सैन गल बल अधिकाई ॥ उड़ी पराग पवन झक झोरा। उठी धूरि मानहुं चहुं ओरा ॥ दामिनि दुति कामिनी बिलासा। मनहुं काम कर बाल प्रकासा ॥ ऐसे काम कोप करि धायो। रूप विवेक के सन्मुख आयो ॥ धनु टंकारि महा धुनि गर्जा। सुनत विवेक कटक सब लर्जा ॥ ५८ ॥

दो० पंच बान करि मन्त्र वित मारे मनमथ राय।
छूटत पंच अनेक ह्वै परे कटक पर आय ॥ ५९ ॥

कुसमारलता छं०—विपुल बाण बरसे। सबै लोग तरसे ॥ लगे तीर कारी। सबन सुधि बिसारी ॥ धरैं नाहिं धीरा। बिकल बाण पीरा ॥ कराहैं सुवीरा। भये सब अधीरा ॥ कोऊ अस्त्र डारे। कहैं आज हारे ॥ सबै ग्रंथ भागे। महा त्रास पागे ॥ समादिक लुकाने। जितै तित पराने ॥ रह्यो धीर कोऊ। अपै भीरु सोऊ ॥ ६० ॥

दो० देख्यो बस्तु विचार तब बिलग भई सब सैन।
धीर अधीर भये सबै हने बिषम सर नैन ॥ ६१ ॥

चल्यो तब रोस उर धारी। महारण धीर बल भारी ॥ बिना हथियार बिनसंगी। मनो हनुमान बजरंगी ॥ दपटि

कै सामुहें आयो। झपटि कै मदन पर धायो॥ यदपि बज्र सर समर छोड़े। तदपि नहिं नेक अंग मोड़े॥ मरदि कै मैन दल भारो। गरद पल माहिं करि डारो॥ लपकि कै काम गहि लीन्हा। उठाके महि पटक दीन्हा॥ रही तिहि कछुक सुधि नाहीं। भयो आनंग पल माहीं॥ ६२॥

दो० जबहीं बस्तु विचार ने मार्यो काम प्रचार।
तबहीं सेन विवेक की जै जै उठी पुकार॥ ६३॥

भुजंगप्रयात छन्द—सुनत क्रोध उततें चल्यो क्रोध भरिके। अगिनिपुंज मानोबड़ो रूप धरिके॥ लियो संग हिंसा भयानक बिशाला। बिपुल अस्त्र धारी मनो तासु ज्वाला॥ झपटके लपट ज्यों दपटि धाय रूधो। महा धूम सेती कटक आय रूधो॥ भई रैन दिनकी बढ़ो अन्धकारा। न सूझे तहां हाथ अपना पसारा॥ न जाने परे आपने को परारे। न सूझे जहां सेा तहां त्रास मारे॥ कितेकों गये जरि अगिन क्रोध माहै। बियाकुल कहैं सब कहा होन चाहै ६४॥

सो० तब इत छमा अगाह शीतल जल सारस मनो।
कोमल बचन प्रवाह पर्यो क्रोध पर जायके॥ ६५॥
पलमें ताहि बुझाय कारो सुख ताको कियो।
बज्जरो दियो बहाय ताको खोज रह्यो नहीं॥ ६६॥

चौ०—बज्जरि लोभ धरि रूप विशाला। तृष्णा संग महा विकराला॥ गिरि कंदर सम बदन पसारी। उदर तड़ाग मनो जलबारी॥ अहि विशाल सम भुज भय दाता। कुम्भकरन मनो रावण भ्राता॥ सन्मुख आय बाज्ज बिस्तारी। लिये लपेट सबै इक बारी॥ समुझि परी ऐसी तेहिकाला। भयो लोभ अब सबको काला॥ ६७॥

दो० तुम प्रताप संतोष तब तोष चोष सर जोरि।
मार्यो सहज कमान सों दियो लोभ मुख तोरि॥ ६८॥

चौ०—एकहि बाण प्राण बिन कीन्हा। बहुरो लोभ उसासन लीन्हा॥ ताके पाछे मत्सर आयेा। ताको परखारथ गहि पायेा॥ ल्याये बांधि नृपति के पाहीं। यह सुधि भई मोह दल माहीं॥ जूझे काम क्रोध अरु लोभा। मत्सर बांधि गयो बे शोभा॥ सुनत मान मद भये बिन प्राना। सकल सैन उरचास समाना॥ रति हिंसा तृष्णादिकनारी। भईं सती सब चिता संवारी॥ कादर जितहित गवहिं पराने। बादर जिमि बरबात उड़ाने॥ महामोह तब कीन्ह बिचारा। जूझे बीर सकल परिवारा॥ सैन हीनआपुहि अनुमानी। भयो चसित अतिसै भयमानी॥ ६६॥

दो० चेटक नाटक आदि जन छती भीर कछु तीर।
भाग्यो तिनको संगलै धारि सक्योनहिं धीर॥ ७०॥
देखतही सबके दृगन कितहौ गयो समाय।
खोजि रहे इत नृपति जन ताको खोजन पाय॥ ७१॥
पाई आपुन की कृपा बिजै विवेक भुआल।
हरषित हने निशान तब बाजे शंख बिशाल॥ ७२॥

श्रीहरिभक्ति० चौ०—कह्यो भक्ति यह भलो न कीन्हा। जियत मोह को जान जुदीन्हा॥ जब लगि प्राण मोह तन माहीं। तब लगि होति सुचितई नाहीं॥ जो सरदार बचै रणमाहीं। सेन जुरत पुनि अवघट नाहीं॥ अल्पकाल महं पुनि दलजोरी। अरिसन करै न गई बहोरी॥ ७३॥

दो० बिष्णु भक्ति पूछी बहुरि कछु सरधा एहि काल।
मोहपराजै को सुन्यो मनको कहा हवाल॥ ७४॥

सरधाउबाच० कुसुमबिचिचा छं०—सरधा कही अहे सुख दान। मनको दशा नपरति बखान॥ प्रबर्त नाम ताको बर नार। मन को तासों अधिक पियार॥ सो कामादिक बध सुनि कान। सुनत सनेह तजैं तिन प्रान॥ ताते मनहिंशोक अधिकाय। चाहिय अब मनहूं मरिजाय॥ ७५॥

भक्ति० दो० भक्ति कही यातें भलो कहा जुमन मरिजाय।
सकल काज बिन श्रमहि ममतौ सहजहि बनिजाय ॥ ७६ ॥
अरु मनछ बज्रकष्टतें छूट लहे निज रूप।
लीन होय सुख ब्रह्ममें जो सब भांति अनूप ॥ ७७ ॥
हे उपाव ऐसो कछू सरधा प्रकट बखान।
जातें मन तजि देहको पहुंचे पद निर्वान ॥ ७८ ॥

सरधा० रोला छं०—सरधा कही जो उपनिषद् आव विवेक निकेत। सहित प्रीत विवेक सों तासों बनै संकेत ॥ तब होय ताके गर्भ तें परबोध सुत जेहि काल। तौ प्रकट ताके होतही मन देह तजि है हाल ॥ ७९ ॥

भक्ति० तोमर छं०—तब कह्यो भक्ति कृपाल। मन है दुखित एहि काल ॥ पठइय सरस्वति जाय। तासों कहै समुझाय ॥ जातें मिटै यह पीर। धारै कछू उरधीर ॥ ८० ॥

दो० ऐसे कहि हरि भक्तिको तुरय निदेश सुख देत।
करि प्रणाम तब सर सुती उठी सुवागस हेत ॥ ८१ ॥
निकसि अखारे तेगयो स्वांग जहां मनराज।
संग संकलप दास इक अरु बिकल्प दोउ बाज ॥ ८२ ॥

पङ्कजवाटिका छं०—अतिहि बिकल आवत अचेत। रुदत पुकारत नाम लेत ॥ परयो भूमि तल अति बिहाल। कहत कहां सब मेरेलाल ॥ अहे काम हेक्रोध लोभ। होम-मत्सर मदमान छोभ ॥ देखि परत नहिं आज तात। कहां गये तजि बिरधा तात ॥ दुख समुद्र मह मोहिं डार। तात उतरि तुम गयउ पार ॥ अहे बधू रति काम पियारि। हे तृष्णा हिंसादि नारि ॥ कितहि गई लैपतिन साथ। मोको करिकै अति अनाथ ॥ भयो बिरध अवलंब बाज। गिरयो लकुट मम करते आज ॥ अंगुरी गहन प्रबर्त सुबाम। तुम बिहीन सोउ तजति धाम ॥ केहि करौं अवलंब हेत। यह कहि मन परधर अचेत ॥ ८३ ॥

दो० तब संकल्प विकल्प दोउ मनको लियो उठाय।
समाधान लागे करन बचन विचार सुनाय ॥ ८४ ॥

संकल्प० पङ्कजवाटिका छं०—महाराज मन तुम सुजान। कत बिलपत जैसे अजान ॥ सुत कलत्र को काको नाथ। यह सब है दस दिनको साथ ॥ जैसे तृण जल बहत सुजान। कङ्क होत इक ठौरे आन ॥ पुनि प्रवाह कोउ ऐसो आय। जात जितै तित सबहि बहाय ॥ यह सब है करता को खेल। कतङ्क बिरह कङ्क करत सुमेल ॥ को काको अवलंब नाथ। है यह सब करता के हाथ ॥ तातेतजिये शोक शरीर। हरि अवलंबिय धरिये धीर ॥ ८५ ॥

कवित्त—अङ्गी अरधङ्गी हितबन्धु सनबन्धी ताके हेत मतिबन्धी मन पाछे पछताय है। अङ्गहीलों अङ्ग छिनभङ्गी जब होय गयो नाशभे अनङ्गीतब अंगी कहा पायहै ॥ घरहीलों कोई कोई आंगन डगरहीलों चिता के समीप कोऊ जाय है तौ जाय है। येतौ है छतंगी दिना चारही के रंगी सब अन्तके समय कोतेरो संगी रामराय है ॥ ८६ ॥

मन० दो० तब सङ्कल्प विकल्प सों बोल्यो मन बिलखाय।
कङ्कित प्रवर्त्त सुलोचनी मेरी सुखद सहाय ॥ ८७ ॥

सङ्कल्पउवाच०चौ०—कह संकल्प सुनिय भूपाला। भयो प्रवर्तिहि कष्ट बिशाला ॥ ताकी कोप त्रैातरे जेते। भयेबिनाशवन्त सब तेते ॥ तिनको शोकागिन अति भारी। सहि न सकी अतिही सुकुमारी ॥ सुनत सनेह तजी निज देहा। तजिय राज अब प्रवर्त्त सनेहा ॥ सुनि संकल्प बचन मनराई। मुरछि परेउ महि अति बिकलाई ॥ बहुरि बिलाप करनसो लागा। अहह प्रवर्त तुमङ्ग मुहिं त्यागा ॥ अब जीवन मम अधर अधारा। महा कष्ट याको नहिं पारा ॥ आनिय काठ चिता रचि कीजै। तामहं डारि अगिन मोहिं दीजै ॥ बिन

प्रवर्त सुद्धिं जियन दृथाहीं। वेगिय अरु उपाय कछु नाहीं ८८ ॥

दो० ऐसे बिलपत सभामधि मन सवांग बिलखाय।
तबहीं पठयो भक्तिने स्वांग सरस्वति आय ८९ ॥

सरस्वती० रंगिका छं०—निकट जाय सरस्वती कह्यो मनसों यहि भांती। ऐसुत तोको आज लखति मैं निपट बिभाती ॥ ऐसे शोक संताप रुदन दिन तोको कहिं है। तुम सब समझत तात जगत में को काको है ॥ तोको दीन्हीं दई बुद्धिसों सुद्धि बिचारा। पढ़े गुने सब भांति कियो निरनय संसारा ॥ जो उपज्यो धरि देह अवशि बिनशै छोटो बड़। ब्रह्मा बिष्णु महेश देव दानव चेतन जड़ ॥ जो कछु आवत दृष्टि नष्ट सबही ह्वै जाहीं। जानि बूझि बे काज दुखित कत होत दृथाहीं ॥ ९० ॥

मनो० दो० तब मन कह्यो जु मात तुम कहति सत्य सबबात।
महा शोक मम उर भ्रमित तातें समुझिन जात ॥९१॥

सरधाउबाच० ये सुत तोको शोकजो भयो अधिक उर आन।
सो अधिकाई प्रीति की कारन है यह जान ॥९२ ॥
जो तूचाहै जगत में शोक न व्यापै मोहि।
तो न नेह कछु कीजिये दुख सनेह ते होहि ॥ ९३ ॥
जैसे भोजन अधिकते दुखद अजीरन होहि।
तिमि अधिकाई प्रीति की दुखदाई मन तोहि। ९४ ॥

सवैया—माता पिता हित बन्धु सगे सुत नारि सबै अरु चाकर चेरे। तू हित मानि रह्यो इनसों निशि द्योस भ्रमै जिमि भौंरके बेरे ॥ इनके दुखते दुख पावत है सुतौ है सबयो हित स्वारथ केरे। जीवत जारत हैं तोहि तात सु ये पुनि जारन हारहैं तेरे ९५ ॥

मनउबाच० चौ०—तबमनकह्योसुछपानिधाना।मातबात तुम सत्य बखाना ॥ हैं ऐसे जैसे तुम भाषा। तदपि नमिटत प्रबर्त्त अभिलाषा ॥ ताके बिरह शोक की ज्वाला। भसम

होत मम देह दयाला ॥ भली करी आई करि करुना । अ-
न्त समय देख्यों तुव चरना ॥ ९९ ॥

सरस्वती० दो० अहे सबन कह सरस्वती कत मानत दुख भीर ।
होत महा कादर कहा आदर दय उरधीर ॥ ९७ ॥

चोटक छं०—जिनको तुम मानि रहे अपने । सुत नारि स-
नेह के शोक सने ॥ जिनके बिरहानल देह दहौ । करि नेक
विचार तिन्हैं न चहौ ॥ अबलों तुम पालत हारि मरे । कोउ
काम न आय तिहारे खरे ॥ अब हौ तिनके दुखतेज दुखी ।
कोउ आयो कि आय करैगो सुखी ९८ ॥

सवैया० आए कहांते कहौ तुम आपहु आय कहांते तुम्हारे
ये नातहै । जात भये कितको सिगरे अरु तू मरिकै कितको
कहि जातहै ॥ नाचत पूतरी पेषनेलों जग डोर नचावन
हारकेहाथहै । तेरोकहा जो तूमेरो कहै हठि हेरो विचार
कहा विललातहै ॥ ९९ ॥

मनउवाच० सोमराजी छन्द—जननि यदपि तुम सत्य
बखानत । तुमजो कहत सत्यमैं मानत ॥ तद्यपि ये मेरे सब
लालन । मैं कीन्हों इनको प्रतिपालन ॥ कीन्हें युवा बालते
सबहिन । मेाते रहे बिलग ये कबहिन ॥ तिनकी मिलन
हलन अरु बोलन । चितवन छुलन विलास कलोलन ॥ अब
वह प्रीत न उरतें खसकति । छिन छिन मांह करेजे कस
कति ॥ १०० ॥

सरस्वती०दो० तू जो इनमें अपनपो मान्यों है हठि तात ।
सोई तेरो अपनपो कसकत तेरो गात ॥ १०१ ॥

चौ०—ज्यों तू कीर चेटुवा पालै । ममता करि ताको
प्रतिपालै ॥ रहत मूषहू तव घरमाहीं । तिनमैं तेरी मम-
ता नाहीं ॥ जोऊदर ले जाय बिलाई । तौ तुहिं दुःख न ब्यापै
राई ॥ जो मंजार कीरलै जाई । तेा तू दुखी होय अधिकाई ॥

तेरी ममता तुहि दुखदाई। कीर मूष सम उभै बिलाई १०२॥

दो० जोतू मैं मेरो तजै आपा देहि मिटाय।
तौतोहि दुख व्यापै नहीं यह सब सुपन लखाय॥ १०३॥
जो कदाचि ऐसे कहे सुत मेरे अंगजात।
इनको शुक अरु मूषकी पटतर क्यों कहिजात॥ १०४॥
तौ सुत तनते होत है स्वेदज ह्वै तन जाय।
सुतहि खेलावति गोद लै स्वेदज सो अरि भाय॥ १०५॥

कवित्त०—मानलियो तात भ्रात मानलियो पिता मात मानलियो अरि मित्र जात अरु पांतहै। मानलियो आपा पर मानलियो नारि नर मानलियो दुःख सुख दिन अरु रातहै॥ मानलियो नरक सरग पाप पुण्य मान मानलियो हानि लाभ भांति ह्वै विभांतहै। जग सब झूठहै मरीचक को योत जैसे जानलियो सांच मानलियो एकबातहै॥ १०६॥

मन०दो० तब मन कहि ये मात अब कहिये कछू उपाय।
प्रीति फांस मम उर बंधो सो जाते छुटि जाय॥ १०७॥

सरस्वती रोला छन्द—ऐ सुत तो कहुं कही एक अति सुगम उपाई। करिके बुधि के कान सुनै जो तू चितलाई॥ ताको करि अभ्यास फांसजो काटो चाहै॥ बहुरि न व्यापै दुःख तोहि वह सुखद सदाहै॥ प्रथम जगत रस त्याग विषै रस जानहुं फीको। है यह मिथ्या साज खेलज्यों भानमती-को॥ देखहु हृदय बिचारि सकल परिवार तिहारो। भयो गयो धों कहां रह्यो नहिं नेक चिन्हारो॥ छोड़ि झूठ सों प्रीति रीति सांचे सों कीजै। सदा एक रस रहै समुझि तामैं चित दीजै॥ यह उपाय उर धरै करै तो छूटै फांसी। तोको नहिं पुनि दुःख अहै तू आनंद रासी॥ १०८॥

मन० चौ०—मात कृपाकरि तुमजो कहेऊ। वाते मैं अब कछु सुख लहेऊ॥ गड़े शोक सर मम उरभारी। सो अब निकसे कृपा तुम्हारी॥ तदपि पिरात घाव अस्थानू। मात

यतन अबतासु बखानू ॥ जाते मिटै पीर यह सारी । कहिय सु भेषज हृदय विचारी ॥ १०९ ॥

दो० हे सुत औषधि कहउं तुहि परम गुनद समुझाय ।
पियउ अचिन्ता मूरि अब चिन्ता पीर नसाय ॥ ११० ॥

मन०चौ०—अहोमात यह तुम जुबताई । मूरि अचिन्ता गुनद सुहाई ॥ मैंहूं जानत हौं यह बाता ॥ अहै अचिन्ता बड़ सुखदाता ॥ यदपि अचिन्ता लै उर धारौं । चिन्ता को बड़ भांति निकारौं ॥ तदपि पीर चिन्ता अति भारी । उरते निकसति नाहिं निकारी ॥ १११ ॥

सरस्वती०कुसुमबिचिचाछन्द०—यह कारन अशान्ति को तात । ताते चिन्ता नहीं नसात ॥ जो तू शान्ति लेहि अपनाय । तो यह चिन्ता सहज नसाय ॥ ११२ ॥

मन०तोमर छन्द०—तब मन कही कर जोर । ऐ मात कहत निहोर ॥ कछु शान्ति कहियत काहि । कैसे लहौं मैं ताहि ॥ ताको सरूप बखान । कछु तासु चिन्ह प्रमान ॥ अब बेग मोहिं बताय । जेहि पीर चिन्ता जाय ॥ ११३ ॥

सरस्वती० दो० कह्यौ सरस्वती सुनउं सुत अति रहस्यय बात ।
बिन अधिकारी कहिय नहिं जासों तासों तात ॥ ११४ ॥
जो कोउ आरत दुखित अति खोजी सांचो होय ।
तासों कहिये भेद यह सुनि सुख पावै सोय ॥ ११५ ॥

मन०चौ०—अति अरात पूछौं मैं माता । मोतें दुखित न विय जग जाता ॥ सत्य कहौं गहि चरण निहोरी । अब सब भांति मोहिं गति तोरी ॥ कहिय सुवेग उपाय बिचारी । चिन्ता दुःख मिटै जेहि भारी ॥ ११६ ॥

सरस्वती०गंगोदक छं०—तात जो बात उरमाहिं आई यहै जानि तेरे महा भाग जागे अबै । शान्ति के रूपकों प्रकट तोसों कहौं मिटै चिन्तादि दुख सुनत जाके सबै ॥ सो सदा

एक आनन्द रसमै मगन हर्ष बिषादि नहिं ताहि व्यापै कबै। सीत अरु उष्ण भय भरम भागै भभरि जबहिं सुख शान्ति हिय माहिं आवै जबै ॥ ११७ ॥

चौ०— सेा वह शांन्ति हृदय तब आवै। जब तूं ब्रह्म सुखहि चित लावै ॥ ब्रह्म सच्चिदानन्द अखण्डा। जाकी कला अमित ब्रह्मण्डा ॥ सदा एकरस आनंदराशी। परम प्रकाश अलख अबिनाशी ॥ तासु भवन उर अंतर करई। तासु बिचार बिचारत रहई ॥ यहि बिधि अपनेा काल बितावै। ततछन संतशान्ति सुखपावै ॥ औरौ तोहि कहौं सुनि ताता। अति रहस्य अति सुगम सुबाता ॥ ११८ ॥

दो० ब्रह्मजु व्यापक एक रस अलख अनादि अरूप।
सगुन सगुन दुइ रूपसेा अलख अगाधि अनूप ॥ ११९ ॥

भुजंगप्रयात छं०—निर्गुन निराकार निर्दोष जोई। भगत प्रेम बस तें सगुन होत सेाई ॥ बिना रूप निर्गुन हिये में न आवै। सु तातें सगुन के चरन चित्त लावै ॥ कहौं सेा सुबन रूप तोसों बखानी। धरौ उर सदन में सुखद रूप जानी ॥ सरद चंद केते बदन देखि लाजै। पदुम नील मणि घन बपुष कान्ति राजै ॥ अधर नासिका रद चिबुक चारु शोभा। हसन माधुरी में सुकेा जा न लोभा ॥ नवल दल कमल लाल अंबक सुहाये। निरखि चारु चितवनि किते कौ बिकाये ॥ तिलक भाल भृकुटी कि शोभा सुहाई। परम माधुरी छबिलखै सेा लुभाई ॥ कुटिल श्याम अलकैं मनो नागनारी। अपैबिष बिहोनी अमीधर पियारी ॥ डसैदृष्टिजा-की अमर होत सेाई। कहै तासु उपमा कहा और कोई ॥ करन मुक्त कुण्डल मुकुट शीस भ्राजा। सकै को बरनि चारु शोभा समाजा ॥ लसै कंठ बनमाल कौस्तुभ सुहाई। हिये

चिन्ह श्रीवत्स शोभामहाई ॥ अतीही सुभग बाहु दीरघ सु दोऊ। विभूषण मनिन के परम दिव्य सोऊ ॥ १२० ॥

दो० पीत बसन कटिका छनी उदर उदार सुचार।
नाभिमनोहर भंवर जनु शोभासिंधु अपार ॥ १२१ ॥

सो० सुन्दर पद अरबिन्द शुभसीतलतै तापहर।
भरे मुक्ति मकरन्द होऊतात मन भृङ्ग तहं ॥ १२२ ॥

चौ०—ऐसो रूप भक्ति हित धारै। लीला करत अनेक प्रकारै ॥ कहूं अधर धरि सुरलि बजावैं। रमत रास रस रंग उपावैं ॥ कबहूं धनुष बान कर धारैं। दुष्टन हति भुव-भार उतारैं ॥ कहूं चार भुज धरैं चारु अति। शंख चक्र गद पदुम लसत अति ॥ ऐसो सगुन रूप भगवाना। प्रेम सहित सेवहिं विधि नाना ॥ काम रहित चरनन चितलावै। दरशन बिन फल औरन भावै ॥ १२३ ॥

दो० नवधा बिधि कर पूजई सगुन ब्रह्म को रूप।
निरगुन सहजहि आइ हे तब तुवहिये अनूप ॥ १२४ ॥
होय शान्ति व्यापै नहीं तब मिथ्या भव ताप।
आवा गवन न शाय पुनि मिटहि सकल संताप ॥ १२५ ॥

सो० सुनतहि यह उपदेश भव मोचन संकट समन।
मन को गयो कलेश धाय सरस्वति पद गहे ॥ १२६ ॥

दो० पुनि पुनि पद बंदन किये कह्यो जोरि दोउ हाथ।
अहो मातुव कृपा तें अब मैं भयों सनाथ ॥ १२७ ॥
बह्यो जात भवसिंधु मैं मगन होत दुख भार।
बचन जहाज चढ़ाय मुहिं मातु कीन्ह तुम पार ॥ १२८

चौ०—मात कृपा तव गयो विषादा। सुखी भयों अब चरन प्रसादा ॥ अब करि कृपा कहिय पुनि सोई। जातें बहुरौ भ्रम नहिं होई ॥ बहुरि शोक संताप न व्यापै। समुझि सुदशा हृदय मम कांपै ॥ जब मन दीन भयो एहि भांती। तब सरस्वती कह्यो हरषाती ॥ १२९ ॥

सरस्वती०दो० अबये सुत जो तोहि हित लाग्यो मम उपदेश।
तजि विषय न को वासना तो उर भयो सुदेश ॥ १३० ॥

रोला छं०—ततकालहि बैराग खांग आयो प्रसन्न अति। कहत भयो एहि भांति चार सुख निपट चार मति ॥ देखहु नरतन कहारचो सुन्दर को मबहर। हाड़ मास नस रुधिर पीव मज्जा मिलाय कर ॥ चितवन बोलन चलन किये गुन भिन्न अंग अंग। ऊपर दियो लपेट चाम अद्भुतहि रंग रंग ॥ जो न होत तन चाम मास माखी सब खाहीं। कहं लगि सकै उड़ाय चोंच कौवा लै जाहीं॥ तापर यह रस विषय कियो यातनमें फांसी। इक छिन जाते लहत नहीं नर कबहुं खलासी ॥ १३१ ॥

दो० देख परत सबही फंसे या शरीर सुख माहिं।
निज करि कैं तनकी गतिहि लखै सुलखियत नाहिं ॥ १३२ ॥
तबहीं मनसों सरस्वती कह्यो बड़ो तुव भाग।
बिनु बोले आयो अपुन तेरे ढिग बैराग ॥ १३३ ॥
मन लखिकै बैराग को कह्यो सहित अनुराग।
आव पुत्र मेरे उर लगो धाय मिल्यो बैराग ॥ १३४ ॥

मन०चौ०—एसुत शुभ आगमन तुम्हारा। भयो परम सुख करन हमारा ॥ मिटो शोक श्रम गई दुराशा। अब अन्तर बाहिर तम नाशा ॥ भेंटि तात तुहि गात जुड़ाने। मिटी ताप संताप नसाने ॥ अस कहि लीन्ह हर्ष उर लाई। तब बिराग बोला सुख पाई ॥ १३५ ॥

बैराग०तोटकछन्द०—तुम तात सुनैं परबीन महा। केहि कारन शोक संताप सहा ॥ हित मात पिता सुत बंधु जिते। मिलि जात ज्यों बाट बटोहि किते ॥ पथ बीच किते पथि-कानि मिलैं। बिसराम करें इकठौर भलैं ॥ निशि नासत कर्म संजोग जबै। अपनी अपनी मग जात सबै ॥ १३६ ॥

दो० जैसे नर सरिता विषैं चलत नाव चढ़ि एक।
पार भये सब उतरि कै मारग गहत अनेक ॥ १३७ ॥

संजातछं०—ए और जो दृग देखिये। नहिं तिन्हैं थिर लेखिये॥ जिमि रूखरासर तीरमें। बहि जाहिदूक दिन नीर में॥ तिमि कालके चरबन सबै। कछु चबै कछु चाबै चबै॥ जगस्वपन की मरयाद है। सबबाद हर्ष बिषाद है॥ १३८॥

दो० बिन समझे जीवत जगत समुझ परत हे तात।
जैसे जीवत सपन में मरे जगे भ्रम जात ॥ १३९ ॥
बिनजाने जिमि जेवरी अहि करि मानत शंक।
जाने सुनि मिटिजात पुनि तैसे जग निहशंक ॥ १४० ॥

सवैया—येमन भूलिरह्योहै कहा बिषया रसमैं निशि द्यो-स बहै। है जग झूठ धुवां कोसो धाम मृगाजल सोहत प्यास चहै॥ धावत धावत धाय मरौ अमहीं इक केवल हाथ रहै। चेत अजौममता तजिकै समतासुख आनंदसिंधु लहै॥१४१॥

रोलागमनछं०—तबमनकहीसरस्वतीसेतीअहोमातहित कारन। भयो बचन बैराग सुनैते उरको मैल निवारन॥ कियो प्रकाश शान्तिशशि भीतर चिंता मिटी अंधेरी। शी-तल सुखद तापचय नाशक भई अचिन्त उजेरी॥ १४२॥

सरस्वती—सुनहु तात तुमहौ मनराजा पुनिगृहस्थ अति भारी। चलन रहन बैराग बीरको है गृहस्थते न्यारी॥ धरि बैराग सीख उर अन्तर ऊपर रहि घरिबारी। करि प्रारब्ध भोग तजिदावा राजकाज बिस्तारी॥ है बैराग जासु उर अंतर सदासुखी सो आपै। सम्पति हरष बिपति की संशय ताको कबहुं न व्यापै॥ जगत प्रपंच ताहि नहिं लागैसो बन रहो कि धामैं। जोग बियोग भोग समताको ज्यों बिदेह बसुधा मैं॥ तातें है तुवनारि सुन्दरी दुतिय न्ववर्त्ति प्रवीना। पति देवता परम हित कारिनि ता कहं तुम तजि दीना॥ अब करि प्रीति दिलासा ताकों बोलि राखिये धामैं। ताहि

आपनी सेवा दीजै तुमसुख पावो जामैं ॥ बहुरि मयची करुना मुदिता अनुकम्पहि हंकारो । बिष्णु भक्ति आज्ञा ते तुव तट रहैं सहचरी चारो ॥ और पुच्छ सम दम यमादि तुव हैं पण्डित गुनवंते । आज्ञा देहु तिन्है ढिग तेरे बेदहि रही पढंते ॥ पुनि विवेक सुत बड़ो तुम्हारो है लायक नय नागर । सहितनारि उपनिषद्नाम जेहि रहैतुम्हारे आगर ॥ ताहिकरो युवराज आजतैं काज भारतेहि दीजै । एहिबिधि साज समाज आपनो राज चिलोकी कीजै ॥ १४३ ॥

दो० मन उठिकै सरस्वती के पायन परो बहोरि ।
लज्जित लज्जितही कह्यो सिरपर आयसु तोर ॥ १४४ ॥
तबहीं स्वांग समादि बहु अरु विवेक अभिराम ।
हरषित आये सभा मधि मनको कियो प्रणाम ॥ १४५ ॥
मन कछु हरष संकोच सह सुत अंकम भरि लीन्ह ।
निरखि हरषिकै सरस्वती मनकहं आशिष दीन्ह ॥ १४६ ॥

सरखती०चौ०—अबसुत राज सिंहासन लीजै । ये सुत अपने मंत्रीकीजै ॥ करहु राज चिभुवनको ताता । एहि बिधि होहु सबहि सुख दाता ॥ जीवात्मा तवपिता पुनीता । परमात्मा सुत परम बिनीता ॥ विवस प्रीति तव बहु दुखलयऊ । मोह विवस तुम तेहि तजि दयऊ ॥ ह्वै निराश तुमतें सो रहेऊ । कोटि भांति संकट बहु सहेऊ १४७ ॥

दो० । राज काज को भार सब दै विवेक सिर आप ।
प्रीति आतमा सों करहु मेटहु पितु संताप ॥ १४८ ॥
तजि सुभाव निज चपलता आतम हित अनुमान ।
अपनो आदन्वयाद लखि परमात्मा उर आन ॥ १४९ ॥

सोमराजी छं०—मनये बचन सरखतिके सुनि । धरिबैराग बचन उरमह पुनि ॥ तजि निजटेव भयो अस्थिर गुनि । भई पुनीत प्रीत पितुपद पुनि १५० ॥

हाकलिका छं०लखी सरखती मन की दशा । भयो पवित्र सकल दुखनशा । कह्यो तात अबहांते चलो । करिये सुर

सरि मज्जन भलो ॥ देहु तिलांजुल रणजे मरे । होहु पवित्र शोक परि हरे १५१ ॥

दो० । ऐसे मन सों शारदा कहि सब सहित समाज ।
गये सभातें बाहिरे उठे तंच सबबाज ॥ १५२ ॥

इति श्री प्रबोध चन्द्रोदय नाटक भाषापद्यमोटङ्कः ॥ ५ ॥

सो० कछुक कियो शुभगान नृपआगे नागर नटन ।
ततछन प्रकटो आन स्वांग शान्ति पट धारते ॥ १ ॥

दो० सो ऐसे बचन न कहत आयो सभा समाज ।
मोको नृपति विवेकने पठयो यह कहि आज ॥ २ ॥

चौ०—अहेसुता तुमसब सुधिपाई । करी मोह जेहिभांति लराई ॥ काम क्रोध लोभादि कुठाटी । जूझे सकल मिले सठ साटी । गयोमोहतजि रणहिं पराई । जानिन जाय दुरयो कहं जाई ॥ वे सब कपटी कुटिल अभागे । बंचक बिस्व बिषमता पागे ३ ॥

दो० तृण जिमि कछुक प्रकाश करि भये सकल जरि छार ।
पायो निज कृत जनित फल सबहिन भली प्रकार ॥ ४ ॥

छन्द०—औरजो निजकुमति बसमनमोह संगतिमें छतो । मिल्योचीर सनीर जैसे भयो अबन्यारोसुतो ॥ अब त्यागकरि अनुराग तिनसों जग कछू आपुन मयो । तजि विषै भोग बिलास आशा मेटिकै आपा दयो ॥ भयो अस्थिर चपलता तजि एकरस समता गही । सब नीच ऊंच मिटाय दुबिधा प्रीति आतमकी सही ॥ देखि यश निरमल भयो अब मैल ममता नाशकै । अब चहत परमातम मिला यहि बोध चन्द्र प्रकाशकै ॥ ५ ॥

दो० ताते तुम अब बेगही जाय उपनिषद पास ।
आनिय सादर बोलि तेहि करि सब संशय नाश ॥ ६ ॥

चौ०—कह्यो वृतान्त शान्तियों जबहीं । आयो स्वांग

शारदा तबहीं ॥ परम प्रसन्न सभामहं आई। निरखि शान्ति बोली सुखपाई ॥ मातु आज बड़ आनंद तोहीं। दिखियत सो कछु कारण मोहीं ॥ अहे सुता जो शत्रु हमारे। छते महादुख दायक भारे ॥ सो सब अब हरिभक्ति कृपाते। गये विलाय विवेक निपाते ॥ अब सब राज विवेक समाजू। भयो सुचित अति मिट्यो दुराजू ॥ साध सन्त सब अब सुख पावैं। भक्तिभाव करि हरि पद ध्यावैं ॥ चलहि भक्ति पथ अब सुख बीचा। मिटा भरम भै कंटक कीचा ॥ ७ ॥

दो० यह सब कारण हर्ष कर भयो भक्ति बलपाय।
ताते उर आनन्द सम छन छन प्रति अधिकाय ॥ ८ ॥

शान्ति०नागस्वरूपिणीछन्द—कही जुबात मातनैं। सही भगति कृपाहितें ॥ भयो अनन्द मूलहै। मिटी बिमोह शूलहै ॥ ९ ॥

दो० अब कहिये इन दिनन में जीवात्मा की रीति।
राजा मनसों कवनि विधि करत कृपा अरु प्रीति ॥ १० ॥

सरधा०सुप्रियछन्द०—सरधा कही सुन ये सुता। यह बातहै अतिअद्भुता ॥ जीवात्मा मन साथतें। दुख लह्यो अति ता हाथतें ॥ कछुसो नवरनत मैं बनै। बहु दुसह संकट को गनै ॥ सो समुझि अब दुख मानहीं। करि शत्रु सों तेहि जानहीं ॥ अब ताहि मारन चाहही। कछुकृपा प्रीति कहां रही ॥ ११ ॥

शान्ति०दो० शान्ति कही ये मातनो जानि परत अस मोहि।
पुरुष राज आपुन करे मनकी प्रभुता खोहि ॥ १२ ॥

सरधा०चौ०—कह सरधा सुन कुंवरि सयानी। परत पुरुष गति ऐसिय जानी ॥ यद्यपि मन अब पुरुष अधीना। रहत तासु हित लखत मलीना ॥ तदपि पुरुष नहिं ताहि निहारै। राज काज सब आप विचारै ॥ समुझि पाछिलो

दुःख घनेरा। नहिं बिश्वास करतमन केरा ॥ अब करि सुरत पिता प्रभुताई। चाहत मिलन पितहि अतुराई ॥ १३ ॥

दो० ताते यह जानी परति मनको राज मिटाय।
करै राज आपुन पुरुष परमातम रूप पाय ॥ १४ ॥

शान्ति०सो० शान्ति कही ये मात जानिपरी यह बात सब।
अब होइहि केहि भांति माया सन हित ब्रह्मको ॥ १५ ॥
कीन्ही कृपा अपार तव माया के गुण निरखि।
अब कहिये व्यवहार आज कालिहके दिनन कस ॥ १६ ॥

सरधा०चोटक छन्द०—परमात्मा जो सुखसागरहै। सब भांतिअनूपमनागरहै॥ पहिचानि अजाअतिही कपटी। नखते सिखलों छल भूरि जटी ॥ जग जीवजिते मम आतमतें। जड़ होय रहे सब याकरतें ॥ मम ओर न आवन देत तिन्हैं। सब भूलरहे नहिं मोहिं चिन्हैं ॥ तेहिते यहहै अति खोंटि खरी। यहि राखिये बांधियों चित्तधरी ॥ १७ ॥

शान्ति०दो० बड़े भागतें पुरुष के पुरुषोत्तम सुधि कीन्ह।
अब मायातें छोरिके चहत आप ढिग लीन्ह ॥ १८ ॥
करी कृपा जो आपही आप आपनो चीन्ह।
जानि परत तो मोहिं अब अचलराज दून कीन्ह ॥ १९ ॥
कहिय मात अब कवन विधि सहित कुटुम्ब विवेक।
राज काज को करत है साज समाज अनेक ॥ २० ॥

सरधा०चौ०—सुता विवेक नीत निपुनाई। तुम्है विदित सब भांति बड़ाई ॥ देह आदि सुख अनित असांचे। माया कृत परमारथ बांचे ॥ तहां पुरुष कीन्हा घर अपना। सुख मान्यो जिमि नृप पद सपना ॥ २१ ॥

दो० ताकहं चहत उजारि अब करन विवेक नरेश।
नित्य एक रस ब्रह्म सुख बसन चहत तहि देश ॥ २२ ॥

चौ०—जोग बियोग जहां कछु होई। अस्तुति निंदाकरै न कोई ॥ जहां न काल कर्म अरि मीता। परमानन्द प्रकाश

पुनीता ॥ निर्भय अगम ठांव अनुमानी। चाहत तहां कियो रजधानी ॥ २३ ॥

दो० अरु कीन्हों बैरागसों अतिसे प्रेम विवेक।
तासों मंच लिये बिना करत काज नहिं एक ॥ २४ ॥

करुना दया मयची मुदिता। चारिउ बहिन धरम की दुहिता ॥ रहति नृपति सेवा मह सोऊ। आयसु अकनि चले सब कोऊ ॥ मंची सम दम आदि सप्रेमा। रहत भूप ढिग सदल सनेमा ॥ तिनसों मंच करत दिनराती। राजा निकट कहों केहि भांती ॥ शेष शत्रु को रहै न कोई। संशय रहित राजतब होई ॥ २५ ॥

दो० मारिय ममता मोह अरु असत संग प्रतिहार।
अरु संकल्प बिकल्प दोउ मनके खिजमतगार ॥ २६ ॥

शान्ति०सो० जानिपरी यह आज करि अशेष अरि सहित दल।
करै पुरुष को राज बजरि मिलै परब्रह्म सों ॥ २७ ॥
कहिय मात सब बात पुरुष धर्म अरु भूप मन।
मिले रहत केहि भांति आज कालिहके बासरन ॥ २८ ॥

सरधा०छन्द—इन दिनन में है नृपति मनकी प्रीति इक बैराग सों। छोड़ि आशा शुभ अशुभ की कर्म के अनुराग सों ॥ प्रेम नहिं अति धर्म सों कछु सब अनित करजा नई। त्याग सहित बिराग अपनो परम हित करि मानई ॥ २९ ॥

दो० तातें धर्मज्ञ देखिकै मनको हूं रुषपाय।
श्रम तजि बैठो बिलग ह्वै कर्मन सहित चुपाय ॥ ३० ॥

शान्ति० चौ०—अहो मात यह तौ सब जानी। अब यह मोसों कहिय बखानी ॥ राजा महामोह रण त्यागी। सिद्धन सहित गयो कित भागी ॥ कितहूं प्रकट भयो सोउ जाई। कछू खबर ताहू की पाई ॥ सरधा कही अहो मम जाता। तैंनहिं सुनी मोह की बाता ॥ वह जो सठ छल कपट सयाना। कियो जो छल सो तुम नहिं जाना ॥ मधिमा नाम सिद्धि जो आही। इन्द्रजाल विद्या कहैजाही ॥ तेहिबल भांति सवांरिसिं-

गारी। जिमि गुनवति पूतरी सुनारी॥ ताहि कह्यो जान्ह मन पासा। करि कटाच्छ बहु नारि विलासा॥ जेहि तेहि भांति रिझाय बुझाई। करिये निजबस नृप मनराई॥३१॥

दो० जो मन तेरे गुनन पर रीझि करै हित तोहि।
तो विवेक अरु उपनिषद ते पुनि कछु नहिं होहि॥ ३२॥
शान्ति कही यह बात सुनि उठत कांपि मो गात।
वेग कहिय आगे बहुरि भई कवनि विधि मात॥ ३३॥

चौ०—सुनि मधुमती मोहकी बानी। चली भूप मनपै॥ हरषानी॥ अति छल निपुन बचन मृदु कैसी। जग बस करनि मोहनी जैसी॥ देखत सभा सुघट अति रूरी। विद्यावती अविद्या पूरी॥ भारतवेद पुराणरु गीता। मनहुं कंठ सब शास्त्र पुनीता॥ जगमैं जेतक गूढ़ कहानी। सरग पताल भूमि गति ज्ञानी॥ अति आचरज करै सो ख्याला। आई तहं जहं मन महिपाला॥ ३४॥

दो० योगिन रूप जु सिद्धिसो मनके आगे आय।
कौतुक ही महंबेद की रचना रची बनाय॥ ३५॥
बहुरि बिहंसि मनसों कही ये महराज सुजान।
कहा मुक्ति हित कष्ट करि दुखित होत हौ जान॥ ३६॥

मालतीछंं०—लखि सुख कारी। स्वर्ग निहारी॥ जहं सब भांती। सुख दिनराती॥ दुजनहिंहोई। दुखितन कोई॥ जन मनपीरा॥ तहंनहिं धीरा॥ शोचनराई। हरषसदाई। सब सुख राया। सुर तरु छाया॥ विपतिन कोई। अमियुत सोई। अवनि सुहाई। अति छबि छाई॥ सुरतिय गावैं। हिय हुलसावैं॥ नहिं तन रोगा। नहिं कछु सोगा॥ परम सुभोगा। सकल सुजोगा॥ जोइ कछु चहिये। बिन श्रम लहिये॥ ३७॥

सो० ऐसो सुभग सुठाम पूरण सब सुख सर्वदा।
दायक अति बिश्राम समुझिय तहां सुभव न निज॥ ३८॥

दो० कछुक मोहके संगकी ऊतौ वास उरमद्धि।
तौतें मन सुनि स्वर्ग सुख ललचानौ लखि सिद्धि ॥ ३९ ॥

पद्मावती छं०—तबहीं माया कहि समझाया मनसों सिधि यह नीकी। सुनि सिखलीजै कहै सुकीजै सुखदाय-कहै जीकी॥ अरुसंकल्पा बहुरि विकल्पा मनकेसेवक दोऊ। स्वर्ग सुपासा करि पर काशा करन कहत भये ओऊ ॥ ४० ॥

दो० सुनि संकल्प विकल्प वच अरु मायाको मंच।
फिर्यो बहुरि मन सिद्धि तन छोड़ि पाछिलो तंत्र ॥ ४१ ॥

सुन्दरीछं०—शांति कहि धृग धृग मन राजहि। कहा गवांर बिगारत काजहि ॥ अब लग नाहिं मलिनता त्याग-हि। कुञ्जरसौंच मिटीन अभागहि॥ बारहि बार तिन्हैहित मानत। जो दुख दायक सेा नहिं जानत ॥ एसबहैं परमारथ बाधक। सिद्धिगहै नहि मुक्ति के साधक ॥ ४२ ॥

सो० याहोते यहि मार निज प्रभुता चाहत पुरुष।
है यह चपल लबार नहिं याको बिश्वास दृढ़ ॥ ४३ ॥

दो० बहुरि साधना ने कह्यो एदुहिता तेहिठांव।
मन समीप ठाढ़ो ऊतौ शास्त्र तरक जेहिनांव ॥ ४४ ॥

चौ०—बोल्यो तरक शास्त्र कर जोरी। हे सभाग बिनती सुनि मोरी ॥ प्रथमहि प्रभु मैं इन के संगा। भयेां ऊते जिम नाद कुरंगा ॥ भव जंजाल जाल मह फांसेा। ऊते बहुत छूटन के सांसेा ॥ दई योगतें बन्धन टूटे। जैसे तैसे करि तुमछूटे ॥ ४५ ॥

सो० मन कछु गयेा लजाय सुनत न्याय के बचन शुचि।
सिद्धिहि दंडउठ य लख्यो तासु निन्दा करम ॥ ४६ ॥
पुनि बैराग बुलाय कियेा मंच मिलवाहि दृढ़।
चलिये पुरुष रजाय जाते सुख उपजै परम ॥ ४७ ॥
शान्तिकही येमात भली भई जो बचि गयेा।
बिन सचुकीहो बात जो मनताके बश परत ॥ ४८ ॥

चौ०—जो यहभूपति मन उर आनी। चलिये पुरुष रजाय

सुमानी ॥ जो मन रहै पुरुष बस माहीं। तौ पुनि कछू मोह भैनाहीं ॥ तुम कछु जननि जात कहं आजू। मोसन कहौ करन कहं काजू ॥ कह सरधाये सुता सुहाई। मोहिं पुरुष महराज पठाई ॥ ४६ ॥

दो० कह्यो कि बेग विवेक को मम समीप ले आय।
सो मैं जाति बुलावने अब कहि तू कित जाय ॥ ५० ॥

शान्ति० मोहिं बुलावन उपनिषद कह्यो विवेक भुवाल।
है प्रबोध के जन्मकी तेहि अभिलाष विशाल ॥ ५१ ॥
ऐसे सरधा शान्ति दोउ बातैं करि सुखपाय।
कछुक निर्त्तकरि सभातें निकसि गई हरषाय ॥ ५२ ॥

रोला छं०—ताही समय स्वांग जीवातम पुरुष नाम है जाको। ऐसो कहत सभा में आयो पटमन्दिर तें ताको ॥ यह संसार सिंधु अंसै को माया जलसों पूरा। तृष्णा लहरि तरंग उठति तहं लोभ भंवर खरभूरा ॥ बड़वानल हरि उठति तहांलों हिंसा ताकी ज्वाला। पुच कलच मिच झचू गन हैं झषव्याल विशाला ॥ ग्राह अनन्त जात बहु इन्द्री गहिरे जल ले जाहीं। अति बिस्तर दुस्तर गंभीर अति पैर सकत कोउ नाहीं ॥ दम्भमान मद पवन झकोरा मोहावर्त्त अपारा। नहिं अवलम्ब कछू तहं कोऊ सूझै वार न पारा ॥ यद्यपि दुखद भयानक भारी बूड़त भयो निराशा। तद्यपि कृपा भक्ति बोहित लहि लह्यो तीर प्रभु आशा ॥ ५३ ॥

दो० अब मम सब शंसे गये आनंद लह्यो किनार।
चढ़ि जहाज हरि भक्ति की कृपा भयो भवपार ॥ ५४ ॥
ताही समय शान्ति अरु स्वांग उपनिषद रानि।
पट निकेत के अंतरे लगे दोऊ बतरानि ॥ ५५ ॥

चौ०—भरि जल नैन उपनिषद रानी। कह्यो शान्ति सों गद गद बानी ॥ मेरे पति विवेक नृप राई। तिनमोको नीके बिसराई ॥ मोहिं भवन से बाहिर कीन्हा। बहुरो सुरत न मेरी लीन्हा ॥ अब मम उर अति अमरष आवै। नहिं विवेक मुख देखो भावै ॥ ५६ ॥

शान्ति०अम्हतगतिकहं०—अहे सुव्रत बितरानी। तुमजो यह बात बखानी ॥ यह बात न तुमको सोहै। पति निन्दक पति-व्रत कोहै ॥ अबकछु निज कथा सुबानी। तुहि भयो कवन दुख रानी ॥ इतने दिन कहां गवांये। कैसे बिनभूप बिताये ॥ ५७ ॥

उपनिषद०मोदकहं०—जबतेमुहिंराज बिसारदई। बछुरो सुधि भूलि न मेरी लई ॥ तबतें विधि ने गति ऐसी करी। जेहि जाय अज्ञानिन हाथ परी ॥ पशु जे बिन पूछु बिषाण सही। जिन के सम माखन दूध मही ॥ तिन भूषण लूटि लये सिगरे। मम अंगन रूप विरूप करे ॥ अरु मोहिं चह्यौ निज चेरि करै। नहिं अर्थ अनर्थ विचार धरै ॥ ५८ ॥

दो० एहि बिधि मूरख जनन में मैं दुख लह्यो अनेक।
ताको सब कारन यहे मम सुधि तजी विवेक ॥ ५९ ॥

शान्ति०चौ०—शान्ति कही ये रानि सयानी। नहिं कछु दोष विवेकहि आनी ॥ तुम विवेक कहं प्रान पियारी। छिन न बिसारत सुरत तुम्हारी ॥ कहा करैं ताके अरि भारी। मोहादिक अतिशै छलकारी ॥ जब चाहै नृपतुम कहंआना। तबवे करहिं उपद्रौ नाना ॥ तिननें नहिं छिन औसर पावै। जो नृप तुमको निकट बुलावै ॥ धन्य धन्य तव सुव्रत सयानी। धनि तव बुद्धि धन्य तुम रानी ॥ जो कछु उचित धर्मचियकेरा। तुमसु कौन सहि कष्ट घनेरा ॥ अब कछु शोच न उरमें कीजै। सब अरि तुव प्रताप तें छीजै ॥ बेग विवेक पास अब चलिये। हरष सहित तजि शोकहि मिलिये ॥ तब उपनिषद कह्यो हे आली। जबमैं निज आश्रम ते चाली ॥ मारग बीच मिल्यो सुहिंगीता। तिन यह आयसु दीन्ह सप्रीता ॥ ६० ॥

दो० जो विवेक अरु पुरुष दोउ हित करि बैठैं पास।
तोहि मिलि जो पूछैं कछू तहं तू जिनसकुचास ॥ ६१ ॥

चौ०—पुरुष हरषि पूछहि तुहि जबहीं। निज बिरतान। सुनायहु तबहीं ॥ सो सुहिं शोच अहै उरभारी। मोपै लहा।

न जात निवारी ॥ अरज निकट स्वामी के पासा । केहि विधि करिहौं वचन प्रकाशा ॥ ६२ ॥

दो० शान्ति कही ये रानि गीता जो आयसु दयउ ।
अवशि लीजिये मानि जानि परम हित आपनो ॥ ६३ ॥

उप० दो० अहो शान्ति जो तुम कहति तिमि गीतहु कह मोहि ।
ताते तुव संग चलति हौं होनी होइ सो होइ ॥ ६४ ॥

कलहंस छं०—प्रकटो स्वांग सभातब आय।नृप विवेक संग सरधा लाय ॥ पूछत सरधा सों एहि भांति । गई है लेन उपनिषद शान्ति ॥ बहुत कालते भयो वियोग । बन्यो न तेहिसुहिं मिलन संयोग ॥ सो अब ईश्वर जाने ताहि । शान्ति आनिहै कीधौं नाहिं ॥ सरधा कह्यौ जोरि दोउ हाथ। सुनिये अहो जगत के नाथ ॥ शान्ति अवश्य आनिहै ताहि । यामें नहिं कछु शंसै आहि ॥ अहै दूर अति परवत मन्दर। जहं हरि पूजन सब विधि सुन्दर ॥ तहं कुतर्क विद्या की बास । रहत उपनिषद् गीता पास ॥ मुहिं हरि भक्ति कही यह बात । तेहि अब ल्यावत ह्वै है शान्त ॥ सो सब समाचार निजराय । आप उपनिषद् कहिहै आय ॥ अब मुहि पुरुष बुलावन काज । पठयो तुम्हैं चलिय महराज ॥ ६५ ॥

दो० सुनतहि सरधा के वचन तुरतहि उठो विवेक ।
निकट जाय नृप पुरुष के कीन प्रणाम अनेक ॥ ६६ ॥

चौ०—नृपहि देखि पूरुष हरषाई। उठिकर लियो हृदय लपटाई ॥ करि आदर समीप बैठारा । कह्यो अहो सुत प्राण अधारा ॥ यदपि बैस करि मैं बड़ तोतें । तदपि बुद्धि करि तू बड़ मोतें ॥ बड़ि न बूझत बैस बड़ाई । बड़ो वही जेहि बुद्धि बड़ाई ॥ ६७ ॥

दो० बातें भूप विवेक सों करत पुरुष एहि भांति ।
लिये संग उपनिषदको आय गई तहं शान्ति ॥ ६८ ॥
अति सलज्ज उपनिषद लखि परी पुरुष के पाय ।
बहुरि बंदि पति पद कमल बैठी शीस नवाय ॥ ६९ ॥

चौ०—लखि उपनिषद पुरुष सुख माना । तासु शील

गुण हृदय बखाना ॥ कह्यो कि तुम मम चरनन लागी । उचित कीन सो अतिबड़ भागी ॥ हौ परंतु मम मात समाना । है पुनीत आचरन सुजाना॥ कछु विधि बस पति संग बिहाई । अब लगि कहां रहीतैं जाई ॥ केहिबिधि इतने दिवस गवांएउ । कौन भांति निज धर्म निबाहेउ ॥ ७० ॥

उपनिषद०चौ०—हे गुण खानि जगत गुरु देवा । कह निज बिपति सुनाऊं देवा ॥ इक इक दिन इक कल्प समाना । भयो बितीत जान भगवाना ॥ ७१ ॥

दो० प्रथम कुबुद्धी बाद प्रिय मोको मिले अनेक ।
जिनके हीरा अस्फटिक सेत बरन सब एक ॥ ७२ ॥

चौ०—तिन मम जात पांत गुण रूपा । कियो और को और बिरूपा ॥ यद्यपि वेदशास्त्र तिनसुनेऊ । तदपि न ताको नीके गुनेऊ । अंध बिचार बिलोचन हीना । तिन नहिं मोहिं यथारथ चीन्हा ॥ यद्यपि निज मत तिन्हैं सुनावा । बहुत भांति करि मैं समुझावा ॥ तदपि काटि मम बचन बिनीता । हृदय बिचारहिं परम अनीता ॥ ७३ ॥

दो० तब मैं देखा ह्यां रहे हे कलेश निज हाथ ।
नहिं निबाह मम जानिके त्याग्यों तिनको साथ ॥ ७४ ॥

चौ०—बहुरि जाय इक दीख समाजा । बिपुल देव पूजहिं बहु साजा ॥ तिन्हैं देखि उर कीन्ह बिचारा । कछु दिन इहां करिय निस्तारा । तेपि महा सठ अति कुबुद्धी । अपने हितके आप बिरुद्धी ॥ निज स्वरूप नित आनंदराशी । भूलि रहे सो अज अबिनाशी ॥ फिरहिं आप कहं आप भुलाने । हठि अनित्य संततिहि लुभाने ॥ तिन न जान कछु मम मत भेवा । भइउं उदास तहां तें देवा ॥ ७५ ॥

पुरुष० दो० अहे सुता तोको मिले जहं तहं मनुज अपार ।
तिन महं ऐसो आहि कोउ तुव मत जाननि हार ॥ ७६ ॥

उपनिषद०तोमरछं०—कह उपनिषद हे देव । देख्यौं ऐसो केव ॥ मम सिख सुने जो कान । ताको करै परमान ॥ जो

करि विचार सुदेश। कोउ सुनत मम उपदेश॥ तौ मिटत द्वैत कलेश। नहि रहत दुबिधा शेष॥ ७७॥

पुरुष० दो० बहुरि पुरुष पूछत भयो तिनको संग बिहाय।
फेर गवन कितको कियो सब निज कथा सुनाय॥ ७८॥

उपनिषद० चौ०—तहं ते गई देव दिशि दूरी। पथ श्रम कहं बरनौं अति भूरी॥ देखेउं जाय तहां इक शाला। अति सुन्दर अति विशद विशाला। तहां यज्ञ विद्या विधि रहई। नाना यज्ञ तहां सो करई॥ अश्वादिक पशु तामें मारै। ताते वाञ्छित फलहि विचारै॥ देखे सकल तहां के बासी। कर्म प्रधान माननी फांसी॥ बहु विधि कर्म धर्मसो करहीं। यज्ञ विद्या आयसु अनुसरहीं॥ तिन्हैं देखि मम उर यह आई। ह्यां रहिके कछु दिवस गंवाई॥ देखि मोहिं उरमें एमानहिं। इनमें कोउ कहा मुहिं जानहिं॥ अपने उर करके यों आसा। गई यज्ञ विद्या के पासा॥ तासों जाय कह्यो निज नाऊं। मांग्यों तहां रहन को ठाऊं॥ ७९॥

दो० मोहिं यज्ञ विद्या कह्यो तुव छति हम नहिं जान।
कहा आचरन धर्म तुव सो कहि प्रकट बखान॥ ८०॥

छप्पै छं०—तबमैं तासों कही आचरन मम यह आही। निरगुण निरुपम ब्रह्म रूप रेखा जेहि नाहीं॥ जो सबही के मध्य सबै ताके मधि लहिये। सदा एक रस एक एक आनंद में कहिये॥ आदि अंत जाको नहीं भयो न काहू ते प्रकट। लख तिन ताबिन और कछु तासु सुयश निज द्योस रट॥ ८१॥

चौ०—सुनत यज्ञ विद्याममबानी। भई शोच बस कछुक अघानी॥ बहुरि कहत भइ मोसों सोई। पुरुष करम को करता होई॥ शुभ अरु अशुभ करम कर जैसे। ता अनुसार पाव फल तैसे॥ जो पै तू यह बातन मानै। कर्म काण्ड सब सपना जानै॥ पुरुषहि कर्म कार नहिं कहई। कहति कि पुरुष अकर्ता अहई॥ मानो तौ मम मत बिपरीता। मोते ताते होय न प्रीता॥ ८२॥

दो० जो तू चाहे ह्यां रह्यो तो मम मतहि सराह ।
पूजि करम करता पुरुष नतरु इहां तैं जाह ॥ ८३ ॥
नृप विवेक ढिग पुरुष के सुनी उपनिषद बात ।
समुझ यज्ञविद्या समुझि यों बोल्यो सुखकात ॥ ८४ ॥
भभर यज्ञके धूमते धुन्धतासु के नैन ।
सूझपरत नहिं कहति हे तातें उलटे बैन ॥ ८५ ॥

विवेक० रोला छं०—पुरुष जाकी भृकुटि फेरन मैं जगत माया रचै । छिन में मिटावै पुनि रचै एहि भांति ता आगे नचै ॥ सो पुरुषहै है रूप दूक जीवात्म कर्म अधीश सो । निर्लेप दूक निःकर्म परमात्मा पुरुष जगदीश सो ॥ ८६ ॥

चौ०—पुरुष अकर्ता चुम्बक जैसे । करताकर्म लोह थिर तैसे ॥ लोहा हलै चलै नहिं कबहीं । चुम्बक चहै चलावै तबहीं ॥ शक्ति अकर्ता कर्ता माहीं । ताते कर्ता कर्म कराहीं ॥ जैसे दारु पूतरी करकै । नचै नचावै बाजी गरकै ॥ व्यापक पुरुष अकर्ता जोई । सूच धार सम जानहु सोई ॥ कर्ता कर्म पुरुष जो अहई । पुतरी समताके बस रहई ॥ कर्म करत पुतरी सब देखै । सूच धारको कोउ न पेखै ॥ ८७ ॥

दो० तैसे द्वैताके विषे शक्ति अकर्ता आय ।
सोन यज्ञविद्या लखै तासों कहा बसाय ॥ ८८ ॥

चौ०—यह संसार कूप गम्भीरा । तुम अज्ञान अविद्या नीरा ॥ काई कर्म परीतैं कूपा । संसारी सब मे इक रूपा ॥ बरषा विषै महा मद मातें । तामैं परे अकत बहुघातें ॥ ते वाकूपहि मैं सुखमानैं । तमही को प्रकाशकरि जानैं ॥ ८९ ॥

दो० अति अवकाश प्रकाश जो बाहिर कूपा अनूप ।
ते नहिं जानहिं मंद मति परे अंधेरे कूप ॥ ९० ॥
ऐसे विद्या यज्ञ को दूषण कियो अनेक ।
बहुरि समीपहि पुरुषके चुप ह्वै कह्यो विवेक ॥ ९१ ॥
तबहि उपनिषद सों पुरुष पहुतमो हित मानि ।
बहुरि यज्ञ विद्या कहा तोसों कह्यो बखानि ॥ ९२ ॥

उपनिषद० चौ०—बहुरि शोच करि कछु उर माहीं । कह्यो यज्ञविद्या सुहिपाहीं ॥ कह्यो कानलगि अतिहि रसा

यन। तेरो मत जो मुक्तिहि पायन॥ जाते जन्म मरण फिरि नाहीं। नरक सरग दुख सुख मिटि जाहीं॥ सदा एक रस आनंद होई। दूजा भाव रहै नहिं कोई॥ जो यह सुने यज्ञ विश्वासी। छोड़ि यज्ञ सब होहिं उदासी॥ तो पुनि अति अकाज मम होई। यज्ञ कर्म पुनि करै न कोई॥ तातें ह्यां तुव रहन न नीको। वेगजाहु भावै जितजीको॥ सुनत यज्ञविद्य की बानी। चली तहांते अति सकुचानी॥ ९३॥

दो० बरुरि जात मग में लख्यो एक अनूपम ठांव।
सभा जोरि बैठी तहां तिहि मीमांसा नांव॥ ९४॥
भांति भांति की युक्ति करि आनि विविधि अनुमान।
वेद वचन परमाण दै निज मत करत बखान॥ ९५॥

चौ०—ताके निकट जाय कर जोरी। कहे वचन अति दीन निहोरी॥ जो किरपा करिआयसु दीजै। तौ तुमशरन बास ह्यां कीजै॥ पूछत भयो सुमोसों ऐसे। कर्मधर्म तेरो कछु कैसे॥ तबमैं अपनी रीत बताई। तिनसों ऐसे भाखि सुनाई॥ ९६॥

कुण्डलिया—जाको अन्त न पाइये पारवार मधिएक। अलख अरूप अनादि जल लहरैं जगत अनेक॥ लहरैं जगत अनेक उठत जो जलके माहीं। लीन होत पुनि तहीं छूट बाहिर नहिं जाहीं॥ निरमल अथल अगाध एक रस रसहै ताको। ब्रह्मानन्द समुद्र वेद गावत यश जाको ९७॥

दो० ताही आनंद सिन्धु को रहत सदा उर ध्यान।
रसना ताही के यशहि निशि दिन करत बखान॥ ९८॥

चौ०—तब मीमांसा सुनि मम बानी। काह्यो आपने जनन बखानी॥ यह तौ यज्ञ पुरुष को ध्यावै। ताको सुमिरन भजन बतावै॥ तातें इहां रहै सुखपावै। करता के यश को नित गावै॥ तहांजु एक कुमारल स्वामी। मीमांसा रहस्य को गामी॥ बोलि उठोसो सुनहु कृपाला। ऐसी भांति कहति सबकाला॥ अहै अकर्त्ता ईश्वर जोई।

अस्तुति करि यह मानति सोई ॥ ताको कर्म विषै नहिं ल्यावै। ताही को निरमल यश गावै ॥ ता ढिग बैठरहो जन कोई। सुनि यह बात कहतभो सोई ॥ करता पुरुष एकही होई। दूजो और कहञ्ज है कोई ॥ लौकिक पुरुष जीवहैं जोई। होत क्रमहिं क्रम सुरपुनि सोई ॥ सोई आप सुधारै जबहीं। तीनलोक को ठाकुर तबहीं ॥ ९९ ॥

दो० ताके ऐसे वचन सुनि बिहसे स्वामिकुमार।
कल्पोकि ऐसे मति कहो पुरुष देय अनुहार ॥ १०० ॥

चौ०--एक पुरुष व्यापक सब माहीं। साक्षी रूप लये सब ठाहीं ॥ आपुन कछू कर्म नहिं करई। हलै चलै नहिं त्यागै गहई ॥ सदा एक रस परम प्रकाशी। सुखनिधान सुखमैं सुखराशी ॥ अलख अनामय अगम अपारा। सर्व प्रकाशक सबतें न्यारा ॥ १०१ ॥

सो० पुरुष दूसरो जान परम प्रकाशी अमल सोइ।
करता कर्म सुमान माया मोह प्रसंग तेहि ॥ १०२ ॥

चौ०--जो कछु कर्म करतहै सोई। उत्तम अन उत्तम विधि कोई ॥ शुभ अरु अशुभ वाहि जो भावै। तैसो वह ताको फल पावै ॥ नरक सरग सब वाकी इच्छा। करत फिरत यों करम परिच्छा ॥ तातें कर्त्ता कर्म सुहोई। सुःख दुःख मानत है सोई ॥ १०३ ॥

दो० पुरुष अकर्त्ता कर्म को ताको लगे न लेप।
शुभ अरु अशुभ समान दोउ ताते है निर्लेप ॥ १०४ ॥
नृप विवेक उपनिषद तें समाचार यह पाय।
अस्तुति स्वामि कुमार की करत भयो हरषाय ॥ १०५ ॥

चौ०--धन्य कुमारल स्वामी साधू। चिरजीवञ्ज अति बुद्धि अगाधू ॥ ऐसिय भांति वेदञ्ज राखी। जैसी स्वामि कुमारल भाखी ॥ यह संसार विटप करि भाखा। दै खग बैठे ताको शाखा ॥ इक खग विविधि भांति फल खाई। दुरबल रहत परन्तु सदाई ॥ संकट शोच विविधि सो सहई। दुखित मलीन दीन अति रहई ॥ तासमीप खग दूजो जोई। साक्षी

रूप लखै सब सोई ॥ जो दुख सुख कछु बीतत वापै। सो सब लखै नताहि वियापै॥ आपुन कछू खाय नहिं पीवै। रहै तासु ढिग ताहि नछीवै ॥ यद्यपि खाय पियै कछु नाहीं। तदपि पुष्ट संतुष्ट सदाहीं ॥ रहत प्रसन्न परम सुख भारा। जानत है जो जाननहारा ॥ १०६ ॥

दो० ऐसे स्वामि कुमार की अस्तुति करी अनेक।
बहुरि पुरुष के निकट ही चुपहै रह्यो विवेक ॥ १०७ ॥
तबहिं पुरुष उपनिषदहि पूछ्यो अति हित मान।
कहहि तहांते फेरतैं कितको कियो पयान ॥ १०८ ॥

उपनिषद० छतो तहां ते निकटही न्याय शास्त्र को धाम।
बैठे तहं चरचा करत जन अनेक अभिराम ॥ १०९ ॥
विविधि भांति दृष्टान्त सजि तर्क अनेक उपाय।
करत वाद विद्या विपुल सो मैं देख्यौं जाय ॥ ११० ॥

छाकलिकाछं०—कोई तहां वादको करै। कोई निग्रह को अनुसरै। जल्प वितण्डासों कोइ अरै। छल अरु जाति कोई विस्तरै ॥ एषटभेद न्याय के कहे। तिन करिवे सब झगरत रहे ॥ छहो भेद के कहौंजु लच्छन। जानत हैं सब लोग बिचच्छन ॥ १११ ॥

वाद०चौ०—पण्डित दोय बैठे इकठाहीं। तत्व विचारहिं आपुस माहीं ॥ देहीं देह करैं निरवारा। नित अनित्त को करैं विचारा ॥ पक्ष रहित शब्दहि निरवाही। कहत न्याय में वाद सुताही ॥ ११२ ॥

निग्रह—जहां दोयजन अति अभिमानी। समझैं नहीं शब्द की बानी ॥ अपनोही हठ सठ वे ठानैं। औरन दुखै आप दुख मानैं ॥ केवल झगरो ही प्रियजाही। कहत न्याय में निग्रह ताही ॥ ११३ ॥

जल्प—पण्डित दोय जु चरचा करहीं। निज निज जय इच्छा मन धरहीं ॥ नीरस रसको स्वाद नजानैं। न्याय मध्य-तेहि जल्प बखानैं ॥ ११४ ॥

वितण्डा—जहां अल्प विद्याजन कोऊ। करि अभिमा आप मैं दोऊ॥ चरचा बड़ी आप मैंठानैं। बात न कछू यथारथ जानैं॥ आपहि वर पण्डित करि मानैं। ताहि वितण्डा न्याय बखानैं॥ ११५॥

छल—जोरिगांठकै अर्थअनर्थ। लेहिंबनायकहनसमरत्थ॥ आनके पाछहि दूषण लावै। न्यायमध्यसोछल कहवावै॥११६॥

जाति—प्रश्न करै उत्तम जन जोई। ताको उत्तर देय जु कोई॥ ताकरि समाधाननहिं आवै। सुनि तेहि और बहुत दुखपावै॥ ताहि न्यायमैंजाति सुजानै। योंकरि षट भेदहि पहिचानै॥ ११७॥

उपनिषद०दो० भली भांति करि ये छहो मैं देखे निरधार।
नहिं सुख कहु ते लह्यो रहो विचारि विचार॥ ११८॥

रोलाछन्द—कोऊ कहैपरस्परयाविधि जगतबीजहैमाया। अहंकार पुनिजानो तासों सोपुनि त्रिविध कहाया॥ पांच तत्व पांचो तनमात्रा दश इन्द्रिन को जानौ। ऐसे ये सब एक ठौर करि चौबिस तत्व बखानौ॥ पारब्रह्म माया सों मिलिकै इनते जगत उपावै। आप रहत इन सबते न्यारा इनमें नहीं समावै॥ ऐसी तिनकी गति देखी मैंसब मिलि करत विचारा। तब मैं निकट गई सबहिन के देखि चरित यह सारा॥ ११९॥

दो० मोहिं देखि पूछत भये मेरी चलन बिचार।
कोतू कह तेरो मतौ कह तेरो व्यौहार॥ १२०॥

सो० तब मैं अपनी रीत जैसे और न सों कही।
तैसे कही पुनीत एक ब्रह्म को ध्याइयत॥ १२१॥

कुण्डलिया—रूपरेख जाके नहीं आपै सबहीं ठांव। व्यापि रह्यो ज्यों बीजते होत वृक्ष को नांव॥ होत वृक्षको नांव फूल फल तामें कहिये। डार पात जड़ पेड़ बिपुल तहं बीज न लहिये॥ वृक्ष बीजही में अहै बीजहि वृक्ष सरूप। ऐसे व्यापक ब्रह्म को नतहिं प्रशंसति रूप॥ १२२॥

चोटकछं०—यह बातसुनीसुहिंतेजबहीं। करि कोपिउठे सगरे तबहीं॥ एहि भांति कहैं करि रोस सबै। एहि देउ निकासि इहांतेअबै॥ बिनहीं समझे यों बात कहै। जग-दीशहि आप भयो जगहै॥ जगतौ दुख रूप अनित्त सदा। परमेश्वर है सुख सिन्धु मुदा॥ यह कौन बिचार तिन्हैं ज कहै। परमेश्वरही जग रूप अहै॥ जगकी उत्पत्ति सदाते यही। इन चौबिस तत्व नहीं तैसही॥ १२३॥

दो० यह जग माया तें भयो चौबिस तत्व मिलाय।
ब्रह्म सदा यातें जुदो जग अनित्य मिटिजाय १२४॥

तोमरछन्द—परमाणतेजगहोय। ईश्वर बिलगहै कोय॥ कारण निमित्त सुआहि। उपदान करन जुताहि॥ कारण निमित्य सुदण्ड। उपदान मोटो खण्ड॥ १२५॥

रोला छन्द—सुनिकै नृप बिवेक ये बातैं कह्यो। अनघि उरमाहीं। धृग धृग बुद्धि तरक विद्या की जाहि इती सुधि नाहीं॥ माया अरु परमाण कहे जे उपादान सब मिथ्या। जगतौ रबि मरीच काजल ज्यों भ्रमसों भयो अमिथ्या॥ जाको उदय नाश लखियत है सत्य कौनविधि कहिये। जब लगि आत्म बोध नहिं होई तबहीं लैयह लहिये॥ माला बिषय सर्प्प भ्रम जैसे सीप मध्य जिमि रूपा। भ्रम मिटि गये सर्प नहिं रूपा लखिये शुद्ध सरूपा॥ माया अरु परमाण पुरुष सब है वाके अनुरूपा। जल तरंग अरु कंचन भूषण एकहि वस्तु अनूपा॥ नित्य प्रकाशरूप है जोई उदै बिनाश न जाही। जग करता भरता हरतासो नहिं बिकार कछु ताही॥ ज्यों अंबर में जलधर श्रेणी विविधि भांति दरशावै। बिनशै बहुरि मिलै ताही में नहिं बिकार कछु आवै॥ नृपति बिबेक समीप पुरुषके योंजब भाषि सुनायो। हर्ष वन्त ह्वै पुरुष कह्यो तब यह मत मोको भायो १२६॥

पुरुष०सो० बूझो पुरुष बहोरि तदन्तर कैसी भई।
सो सब कहो निचोरि अहो मात अपनी कथा ॥ १२७ ॥

उपनिषद०चौ०—ते पुनि कुटिल कुबुद्धी बौरे। बिन बिचार मुहिं मारन दौरे ॥ कहैं कौन यह कित ते आई। मारौ याहि जियत नहिं जाई ॥ जगत मिटाय मोक्षको कहई। सो तौ मतौ नास्तिक अहई ॥ तबहौं तिनके भयसों भागी। व्याकुल दण्डक बनको भागी ॥ बसन फटे भूषण सब टूटे। तेवे सकल बसन उन लूटे ॥ ता बनमें मन्दिर गिरि माहीं। हरि मन्दिर सुन्दर जेहि ठाहीं ॥ ढूंढी तहां पुत्री मम गीता। गई तहां मैं अति भय भीता ॥ १२८ ॥

पुरुष०दो० जब तू गीता आश्रमहिं भजिकै पहुंची जाय।
तहां बहुरि कैसी भई सो सब मोहिं सुनाय ॥ १२९ ॥

उपनिषद०चौ०—हरि मन्दिर तें हरिजन धाये। मेरी रक्षा को सब आये ॥ सुन्दर रूप गदा कर धारे। तिन्हन दुष्ट वे मारि विडारे ॥ जब मैं तिनको दरशन पायो। तब कछु धीरज मो उर आयो ॥ १३० ॥

विवेक०हाकलिकाछं०—यह सुनिके विवेक यों कह्यो। तुव आक्रमन विष्णु नहिं सह्यो ॥ कृपा पात्र तुम हरिकी महा। हरि जन रक्षक कहिबे कहा ॥ १३१ ॥

उपनिषद०चौ०—देखि मोहिं व्याकुल भै भीता। धाय तुरतही आई गीता ॥ मिलिके मुहिं आदर अति कीन्हों। बहुत भांति सो धीरज दीन्हों ॥ तहीं रहन को ठौर बताई कह्यो न डर ह्यां डर नहिं माई ॥ १३२ ॥

हाकलिकाछं०—बहुरैं गीता मोसों कही। माता तुम प्रमान हौ सही ॥ जो न करैं तुमको परमान। अपनी रुचि कहि कथैं गियान ॥ सो सब मते आसुरी अहैं। मूरख जन जा माहीं बहैं ॥ तिन्हैं दण्ड करता भगवान। नरक बास है

तिन्हैं निदान ॥ ईश्वर ह्वै यौ सुख यह कही। विदित त्रिलोकी में सो सही ॥ श्रुति निन्दक अरु दूषक धर्म। क्रोधी क्रूर आसुरी कर्म ॥ तेनर असुर योनि को लहैं। बहुरो नर्क माहिं तेरहैं ॥ १३३ ॥

दो० ऐसी विधिसों उपनिषद् सब सब कही सुनाय।
सकल शास्त्रन को मतौ अरु निज कथा बुझाय ॥ १३४ ॥
तबहीं माया मैलसों पुरुष होय कै शुद्ध।
निज स्वरूप जानन विषै उपजी निरमल बुद्ध ॥ १३५ ॥
बहुरि उपनिषद् सों कही अहो मात सुखदाय।
ईश्वर कहि सो कौन है करिकै कृपा बताय ॥ १३६ ॥
तब हंसि बोली उपनिषद् बड़ो आचरज आहि।
अपनो नांव न जानही कहा बतैये ताहि ॥ १३७ ॥

पुरुष०चौ०—तुमतौ हंसियह भाखति ऐसे। मानहुं ईश्वर मैं जग जैसे ॥ सो मैं सत्य कौन विधि मानौं। अहो मात तजि हांस बखानौं ॥ १३८ ॥

उपनिषद्०कुसुमविचिचाकुं०—जानि लेहु ऐसे यह बात। पुरुष सनातन के तुम तात ॥ तिनतें तुम कछु न्यारे नाहिं। माया करि ह्वै जाने जाहिं ॥ जैसे बुरज एकहिं होय। जल हिम उपल नाहिं कछु दोय ॥ ऐसेही तुम ईश्वर अहो। तातें ईश्वर तुमको कहो ॥ १३९ ॥

दो० ऐसी विधि उपनिषद् के सुनिकै बचन प्रमाण।
बोल्यो नृपति विवेक सों पुरुष आचरज मान ॥ १४० ॥

तोमरछन्द—तुम सुनत हौ कछु तात। यह उपनिषद् की बात ॥ मोपै न समझीजाय। ये कहतकहा बनाय ॥ परब्रह्म बरनत जाहि। मुहिं कथति सो तू आहि ॥ सत चिदानंद अनूप। सो अहै तेरो रूप ॥ मैं जीव बपुरो दीन। नित जन्म मरण अधीन ॥ दुख जरा आदि असार। दबि रह्यौ

तिनके भार ॥ कबधौं भयौं मैं ब्रह्म। यह बड़ो मोको भर्म ॥ १४१ ॥

विवेक० हाकलिका० छं०—तुम पदार्थको अर्थन लह्यो। तातें हृदै भरम भरि रह्यो ॥ जो तुम तजि माया की प्रीत। देखउ अपनो रूप पुनीत ॥ आपामेटि आप को लहौ। तौ ईश्वर तुम दोयन अहौ ॥ १४२ ॥

पुरुष० चौ०—अहो तात यह समझन माहीं। मोकहं है समर्थ कछु नाहीं ॥ ताते करि कै कृपा बखानौं। जेहि विधि मैं या अर्थ हि जानौं ॥ कैसे आपा दूर निवारौं। कैसे अपनो रूप निहारौं ॥ १४३ ॥

विवेक० कुसुमविचित्रा छं०—प्रथम अपनपौ रूप निहार। तको नीके करौ विचार ॥ बोलत सुनत सुतो मैं कौन। देखत समझत समझौ तौन ॥ बेद वचन पुनि करौ विचार। नैत नेत जो कहत पुकार ॥ नहिं तुम पृथ्वी नहिं तुम नीर। नहिं तुम तेज अकाश समीर ॥ नहिं हंकार नहीं महतत्व। इनमैं तेरो ना कछु सत्व ॥ अब इन तत्वन लैकरि देउ। जैसे भये उलटित्यौं लेउ ॥ पृथ्वी गन्ध माहिं ले करौ। गन्ध बहुरि ले जलमें धरौ ॥ जल रसमे रस तेज मिलाय। तेजरूप में देउ समाय ॥ रूप वायु मैं लैकरि देउ। वायु स्परस एक करि लेउ ॥ स्परसहि देउ अकाश मिलाय। अकाश शब्द मैं जाय बिलाय ॥ शब्द तू विधि अहंकारहि मिलै। अहंकार महत्तत्वहि रलै ॥ बहुरौं महत्तत्व जो आहि। लीन करौ माया मैं ताहि ॥ माया लीन होय जामाहिं। सो तू आहि और पुनि नाहिं ॥ ताही सागरकी तू छीट। नहिं तू सुरनर आगुर कीट ॥ यह जग मिथ्या भ्रम तम कूप। ताहि मिटाय देख निज रूप। स्वप्रकाश सुख निधि जा कोय। सो तू बेद वचन यों होय ॥ १४४ ॥

दो० जब विवेक नृप पुरुष सों ऐसे कह्यो बुझाय।
भयो परम आनन्द जब अर्थ यथारथ पाय ॥ १४५ ॥
लग्यो बिचारन ताहि पुनि बार बार सुखपाय।
लख्यो अपनपौ आपमैं भ्रम सब गयो बिलाय ॥ १४६ ॥

सुगीतिकाछं०—निदिध्यासन स्वांग तबहीं सभाके मधि आय। हर्ष सों तिन नृत्य करियो वचन कहे सुनाय॥ विष्णु भक्तिजु कृपानिधि भगवंत मैं रस आहि। दई आज्ञ मोहिं तिन तू उपनिषद्पै जाहि॥ करति नृपति विवेक के ढिग बैठि बात सुहाय। गूढ़ जो अभिप्राय मेरो ताहि कहि समझाय॥ जाय कै पुनि पुरुष के उरमाहिं तू करि गेह। भयो निरमल शुद्ध जो तहं बसज्ञ सहित सनेह॥ १४७॥

दो० निदिध्यासन यों बात कहि गयो उपनिषद पास।
लियो उपनिषद बोलि ढिग आदर करि कै तास ॥ १४८ ॥

निदध्यासन०तोमरछं०— तिन कही ऐसे बात। सुनु सुचितह्वै तू मात। श्री विष्णु भक्ति सुदेश। कछु कह्यो तुम्हैं संदेश॥ सो मैं सुनाऊं तोहिं। जैसे कह्यो उन मोहिं॥ १४९॥

चौ०—नृपति विवेक मनोरथ कीन्हो। तौ मैं गर्भ धरन चित दीन्हो॥ तुव तन पंचतत्व करि नाहीं। होय गर्भ जो मैथुन माहीं॥ मैं सुयोगबल करि कै जानी। तू अवनिश्वै करि भर्मानी॥ हैहै बाल कोखमेंतेरो। तिनको ऐसीआज्ञा मेरी॥ विद्या नाम सुता इक जोई। संकरषण विद्या करि सोई॥ मनके विषै प्रीति कै धारौ। ताकरिता उर तिमिर निवारौ॥ है प्रबोध विधु सुत पुनि जोई। पुरुष हृदै में धरि कै सोई॥ सहित विवेक गयो मोहिं पाहीं। आवहु बिलंब करौ अब नाहीं॥ १५०॥

उपनिषद०हाकलिकाछं०—देवि उपनिषद तबयों कही। हा मैं गर्भवती हौं सही॥ जो कछु कह्यौ भक्ति महराज। तैसेही करिहैं सब काज॥ पुनि तैसे सब कारज कियो। पति

विवेक कों गोहन लियो ॥ जहं श्री विष्णु भक्ति सुखरास चली उपनिषद तिनके पास ॥ १५१ ॥

दो० ऐसे देवी उपनिषद और विवेक भुआल ।
गये सभा ते निकसि कै दोऊ स्वांग उताल ॥ १५२ ॥
बस्यो पुरुष के हृदय मधि निदिध्यासन सुख मान ।
ताहू को पुनि स्वांग जो ह्वै गयो अंतर ध्यान ॥ १५३ ॥

कुसुमविचिचाछं०—तबहीं विद्या स्वांग अनूप । आयो चमकि तड़ित केरूप ॥ सो मनके उर में दुरि रह्यो । जो तम पुञ्ज अविद्या कह्यो ॥ ताको तुरतहि करिके नाश । कियो आपनो रूप प्रकाश ॥ मायाको प्रपंच हो जितो । विद्या मेटि दियो सब तितो ॥ बहुरि सहित मन बड़ो प्रवीन । भई पुरुष के अन्तर लीन ॥ जैसे ईंधन अगिन जराय । बहुरि आप हू जाय समाय ॥ १५४ ॥

चौ०—ता अंतर पट गृह ते आयो । स्वांग प्रबोध चंद छबि छायो ॥ ताकी उदय जबहिं परकाशी । त्रिभुवन की आशा सब नाशी ॥ सहस सूर सम कियो उजेरो । इत उत हेरि पुरुष को टेरो ॥ अहो पुरुष तुम मो तन हेरो । हौं प्रबोध बंदत पद तेरो ॥ जो कछु आज्ञा मोको होई । सोमैं करौं तुरत सब सोई ॥ सुनिकै पुरुष बोध बिधु बानी । आतुर हरषि उठो सुख मानी ॥ दौरि प्रबोध चंद गहि लीन्हो । उर लगाय अति आनंद कीन्हो ॥ १५५ ॥

दो० कछुक तिमिर के लेशको हुतो पुरुष उर बास ।
सो प्रबोध बिधु मिलतहीं मिटिकै भयो प्रकाश ॥ १५६ ॥

खञ्जाछन्द—लाग्यो कहन आपहि यों अब अहो भाग्य ममकह्यो नजाय । शीतल किरन तिमिर भय नाशक मिल्यो प्रबोध चन्द सुखदाय ॥ परयो रह्यो दुष्टनके संगत अपनो शुद्ध रूप बिसराय । सो प्रसाद श्री बिष्णुभक्तिके करुना करिकै लियो बचाय ॥ अब काहू सों प्रीति करौं नहिं

एक सनातन ब्रह्म बिहाय। करों प्रतीति न दुष्ट जनन को तिनके संग बहुत दुखपाय ॥ दिशि अरु बिदिशि नहीं कछु हेरों शान्त भयो भव भरम नशाय। विष्णु ज्ञान को योग भयो अब विष्णु भक्ति की कृपा सहाय ॥ १५७ ॥

हाकलिकाछन्द--ऐसे पुरुष बिमल जब भयो। माया मैल धोय सब गयो ॥ तब श्रीविष्णु भक्तिरस मई। सब शुभगुन सब शोभा छई ॥ पुरुष निकट आई तब आप। बड़ो तेज अरु बड़ो प्रताप ॥ ऐसे खांग भक्ति को आय। कह्यो पुरुषसों बचन सुनाय ॥ अब सुततेाहि काल बहुभयो। यासुखते न्यारो परिगयो ॥ अबसब सुधरयो तेरो काज। भयो मनोरथ मेरो आज ॥ भली भई तेरे अरि जिते। भये नाश को प्रापति तिते ॥ सुखी बहुरि देख्यों अब तोहिं ॥ तातें भयो बहुत सुख मोहिं ॥ १५८ ॥

दो० पुरुष भक्ति के बचन सुनि परमानन्दहि पाय।
बड़े प्रेम सों दोरिके पर्यो भक्ति के पाय ॥ १५९ ॥

हरिगीताछन्द—जोरि कर बिनती करी ये मात सब सुख धाम तू। कहा दुर्लभ तुव कृपा ते सकल पूरण काम तू ॥ तुम अनुग्रह तें लह्यो अब मेटि दुख आनंद महा। महिमा अपार अनन्त गुन पावन चरित कहिये कहा ॥ १६० ॥

कुसुमबिचिचाछन्द—श्रीविष्णु भक्ति ह्वै कै प्रसन्न। कह्यो पुरुष को धन्य धन्य ॥ अब कहि जो तुहि इच्छा होय। करों आसुही बिलम न सोय ॥ मोको अति प्रसन्न अनुमान। मांगि लेहु वाञ्छित बरदान ॥ हे देवी मेरो जो काज। सो सब पूरण भयो जु आज ॥ भयो सुथिर भव भर्म नशाय। सुख मैं परम शान्त को पाय ॥ द्रोही नृप विवेक के जिते। भये बिनाशबंत सब तिते ॥ अभयानन्द बिमल पद जहां। अस्थित कियो मोहिं तुम तहां ॥ अब कछु इच्छा नाहिंन मोहिं। तदपि देवि याचत हों तोहिं ॥ हैं जो दुखित जीव जग माहिं। भव-

सागर के भंवर भ्रमाहिं ॥ ममता लहर मांझ बहि मरैं। बूड़त उछरत धीर न धरैं ॥ ते करि कृपा पार करि लेऊ। अहो देवि मोको यह देऊ ॥ पुरुष वचन सुनि भक्ति सुजान। कह्यो होऊ सबको कल्यान ॥ बहुरौ खांग संग सब लये। निकसि सभा ते बाहिर गये ॥ याको भाक अहै यह अबै। भये ब्रह्म को प्रापत सबै ॥ १६१ ॥

दो० बहुरि सभा के मद्धि नट कीन्ह्यो निर्ज सुदेश।
भयो प्रसन्न चरित्र लखि कीरत ब्रह्म नरेश ॥ १६२ ॥
मनते ममता मैलकी काढ़े ह्वै गइ दूर।
सादर नट सनमान करि कियो काम भरिपूर ॥ १६३ ॥
कृष्ण दास भट शिष्य को जब यह ग्रन्थ सुनाय।
ह्वै के निरमल बुद्धिसों पर्यो गुरू के पाय ॥ १६४ ॥
फीकी परि गइ चित्ततें विषै बासना रूप।
भयो विवेकी विशद मति पण्डित परम अनूप ॥ १६५ ॥
पढ़ै सुनै समुझै गुनै जो कोऊ यह ग्रन्थ।
ताके उरते छूटि है अहं अविद्या ग्रन्थ ॥ १६६ ॥
भक्ति होय भगवंत की और विवेक प्रकास।
भक्ति विना त्रिभुवन दुखी कह ब्रजबासी दास ॥ १६७ ॥
जो चाहे आनंद सदा रे ब्रजबासी दास।
तौ कीजै हरि भक्ति को छोड़ि विषै की आस ॥ १६८ ॥

इतिश्री प्रबोधचन्द्रोदय नाटके भाषा षष्ठमोऽङ्कः ॥ ६ ॥

इति श्री प्रबोध चन्द्रोदय नाटक समाप्तम् ॥

